बुन्देलखंडी लोकगीत

श्री शिवसहाय चतुर्वेदी

सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय द्वारा मध्यप्रदेश शासन
साहित्य परिषद् के लिए प्रकाशित
१९५९

मूल्य तीन रुपए

मुद्रक—भीमसेन सक्सेना माडर्न प्रिण्टिग प्रेस, जयेन्द्रगंज,
लश्कर (ग्वालियर) म० प्र०

प्रस्तावना

प्रस्तुत प्रकाशन—"बुन्देलखंडी लोकगीत" स्वर्गीय श्री शिवसहाय चतुर्वेदी द्वारा संकलित एवं विशद् रूप से विवेचित बुन्देलखंडी लोकगीतों का संग्रह है, जिस पर मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् ने सन् १९५५ में पुरस्कार प्रदान किया था। इस परिषद् की स्थापना सन् १९५४ में तत्कालीन मध्यप्रदेश शासन द्वारा इस उद्देश्य से की गई थी कि प्रदेश की भाषाओं के विकास के लिए उनमें उच्च कोटि के साहित्य के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु प्रति वर्ष परिषद् की ओर से निर्दिष्ट विषयों पर उत्कृष्ट मौलिक रचनाओं तथा अनूदित ग्रन्थों के लिए पुरस्कार दिये जाते हैं, निबन्ध-प्रतियोगिताएं की जाती हैं तथा विभिन्न विषयों पर श्रेष्ठ विद्वानों की भाषण-मालाएं आयोजित की जाती हैं।

नवम्बर, १९५६ से उक्त परिषद् दो भागों—महाकोशल शासन साहित्य परिषद् तथा विदर्भ शासन साहित्य परिषद्—में विभक्त हुई और अपने-अपने क्षेत्र में क्रमशः हिन्दी तथा मराठी भाषा के विकास में योगदान देने का दायित्व उन पर आया है। महाकोशल शासन साहित्य परिषद् ने अब समस्त नवीन मध्यप्रदेश को अपना कार्य-क्षेत्र मान्य कर लिया है

और वह मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् के रूप में साहित्य की सेवा करने में अग्रसर हो रही है।

राज्य-पुनर्गठन के परिणामस्वरूप इस लोकगीत-संग्रह के प्रकाशन में विलम्ब हो गया है। इसके लिए क्षमा-याचना करते हुए परिषद् का विश्वास है कि बुन्देलखंड के समृद्ध, सरस एवं आकर्षक लोक-साहित्य पर अधिकारी विद्वान द्वारा प्रस्तुत इस संग्रह का साहित्य-प्रेमी स्वागत करेंगे।

मध्यप्रदेश के सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय को शासन साहित्य परिषद् ने जिन पुस्तकों का प्रकाशन-कार्य सौंपा है, "बुन्देलखंडी लोकगीत" उन्हीं में से एक है।

एल० सी० गुप्ता
सचिव
मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्

भोपाल
२६ फरवरी १९५९

भूमिका

भारतवर्ष को लोकगीतों का देश कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। एक ओर इस देश का विशाल लिखित काव्य साहित्य है, तो दूसरी ओर देश और काल में विस्तृत इसका वह जनपदीय साहित्य है, जिसकी परम्परा सुदूर अतीत काल से अथवा अपनी संस्कृति के उषाकाल से हमारे समय तक चली आई है, और जिसकी अक्षय निधि देश के प्रत्येक भूभाग में गुप्त प्रकट दोनों रूपों में अद्यावधि वर्तमान है। लिखित साहित्य और लोक साहित्य, दोनों ही भारतीय आत्मा के दो पंखों के समान रहे हैं, जिनके आश्रय में यहां के मानस सुपर्णों ने भावों के आकाश में अनन्त विचरण किया है। दोनों साहित्य अपने ही अन्तरङ्ग की सृजनशक्ति से उत्पन्न हुए, अतएव दोनों के साथ भारतीय मानस का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनमें पारस्परिक तुलना द्वारा गौरवलाघव की कल्पना का अधिक प्रयोजन नहीं, सहृदय व्यक्ति के लिये तो उस रसधारा का ही अधिक महत्त्व है, जो समान रूप से दोनों क्षेत्रों में बही है। रस की निर्झरिणी ही कविता है। नगर, गांव, जनपद, स्त्री, पुरुष इन सब उपाधियों से ऊपर रहती हुई कविता की रस-धारा, जहां उसका आवाहन किया जाय वहीं प्रकट होती और प्रवाहित होती है। अक्षर, अर्थ, गुण, अलंकार, प्रबन्ध,

छन्द आदि के अनेक उपादानों द्वारा कविता कवि की सृजन शक्ति के अनुसार अल्प अथवा विपुल रस-मात्रा को जन्म देती है। रस सृष्टि या रस की अभिव्यक्ति ही कविता का सरलतम हेतु है। कविता के इसी सरलतम, मधुर, मंडनरहित किन्तु भद्र रूप के दर्शन लोकगीतों में होते हैं। लोकगीतों में भावों का माधुर्य पदे - पदे प्राप्त होता है। जहां भाव हृदय-ग्राही होते हैं, वहां भाषा का माधुर्य रहता ही है। भाव और भाषा इन दोनों के माधुर्य के मानदण्ड से जब हम लोकगीतों को नापते हैं, तो उन्मुक्त हृदय से स्वीकार करना पड़ता है कि यह एक अपूर्व रस स्रोत सदा से हमारे साथ रहा है। उसका विराट् रूप लोक जीवन में सर्वत्र व्याप्त रहा है, किन्तु सहृदय या रसिक की दृष्टि से लोक गीतों के काव्य माधुर्य का रसास्वादन करने की परिपाटी अभी हाल में ही विकसित हुई है।

यों तो संसार का कोई भी देश सम्भवतः ऐसा नहीं है, जहां लोक साहित्य और लोकगीतों की परम्पराप्राप्त सामग्री का भण्डार न भरा हो। कहा जाता है कि आइस्लेंड के प्राचीन लोकगीतों से ही वहां की अनेक गाथाओं का उद्धार किया जा सका है। अथवा साइबेरिया के शीतप्रधान प्रदेशों में जहां की जलवायु में सब कुछ जमकर घनीभूत हो जाता है, मानों लोकगीतों की सामग्री भी शताब्दियों से राशिभूत हो गयी है। अनुसन्धान करनेवाले लोक-शास्त्रियों ने अभी

हाल में उसे पुनः प्राप्त किया है, मानों वह जमा हुआ ज्ञान उनके सत्प्रयत्न से पुनः द्रवीभूत हो गया हो। लगभग बारह महाभारत के बराबर विस्तृत सामग्री उस प्रदेश से लोक-साहित्य का अनुसन्धान करनेवाले वैज्ञानिकों ने प्राप्त की है। भारतवर्ष में भी ऐसा साका सम्भव है। पश्तो, कश्मीरी, दरदी, चमियाली आदि प्राचीन क्षेत्रों से लेकर झारखण्ड, शबरी नदी के किनारे के शबर प्रदेश अथवा मणिपुर, आसाम के आदिवासी प्रदेशों तक अथवा कच्छी, कुंकणी, मलयाली, तमिल आदि के प्रदेशों तक यदि लोकगीतों के संग्रह का कार्य किया जाय, तो निःसन्देह इतनी बड़ी साहित्य-राशि प्राप्त की जा सकती है कि जो सैकडों शतसाहस्त्री संहिताओं के बराबर विस्तृत होगी। यह काम राष्ट्रीय साहित्य संगम के द्वारा सुनिश्चित योजना के अनुसार ही पूरा कराया जा सकता है। इतिहास, धार्मिक विश्वास, मानवीय जीवन, पर्व, उत्सव, संस्कार, आमोद-प्रमोद, नृत्य-गीत, भाषा, शब्द आदि का अपरिमित नूतन भंडार ही इस प्रकार राष्ट्र के सामने लाया जा सकता है। किन्तु अभी भारत की साहित्यिक जागरूकता को उस स्तर तक पहुंचने में समय लगेगा। राष्ट्रीय क्षेत्र के अतिरिक्त हिन्दी के क्षेत्र की जो अनेक बोलियां हैं, उनमें भी यदि लोक-साहित्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो कार्य का अपरिमित क्षेत्र सामने दिखाई पड़ता है। यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी के जनपदीय कार्य-कर्त्ता अपने इस कर्त्तव्य के प्रति सजग हो गये हैं।

विगत पच्चीस वर्षों में हिन्दी के लोक-साहित्य, विशेषत: लोकगीतों के संग्रह का कार्य आगे बढ़ा है। श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने उत्तर प्रदेश के लोकगीतों, विशेषत: अवधी क्षेत्र के सुमधुर गीतों का संग्रह सर्वप्रथम प्रकाशित किया, जिसके फलस्वरूप साहित्य क्षेत्र में इस निधि को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। श्री देवेन्द्रजी सत्यार्थी ने अपने हृदय की अमित उदारता और पैरों की अथक चंक्रमण शक्ति से उस कार्य को अखिल भारतीय स्तर पर बहुत आगे बढ़ाया, जिसके फलस्वरूप लोकगीतों को राष्ट्रीय नव-जागरण की प्रवृत्तियों में सर्व-मान्य पद प्राप्त हो गया। पिछले कुछ वर्षों में भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, ब्रजभाषा, बघेली और गढ़वाली, पंजाबी और मालवी बोलियों के लोकगीतों के छोटे-बड़े संग्रह, उस-उस प्रदेश के साहित्य-सेवियों ने प्रस्तुत किये हैं। बुन्देलखंडी लोकगीत 'मधुकर', 'लोकवार्त्ता' आदि पत्र-पत्रिकाओं में जब-तब प्रकाशित होते रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री शिवसहाय चतुर्वेदी ने उनके संग्रह की ओर विशेष ध्यान दिया है, जैसा कि हम प्रस्तुत संग्रह में पाते हैं। बुन्देलखंड की लोक-कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित करके श्री चतुर्वेदी जी हिन्दी जगत में यशस्वी हो चुके हैं। उनके साहित्य कार्य की यह अगली कड़ी उसी प्रकार स्वागत के योग्य है। जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है, इस संग्रह के लग-भग दो सौ गीत उस विशाल लोक-साहित्य की तुलना में, जो बुन्देलखंड जनपद में भरा हुआ है, केवल नमूना मात्र है। जिस प्रकार सोना शुद्ध करनेवाला कोई सुनार अपने

ग्राहक को उसके एक अंश की चासनी सौंप देता है, कुछ ऐसा ही शिवसहायजी का यह प्रयत्न है। आशा है, इस चासनी के बान से आकर्षित होकर बुन्देलखंड के कोई उदीयमान और परिश्रमी साहित्य-सेवी अपने क्षेत्र के लोक-गीतों का उस प्रकार का विशाल संग्रह प्रस्तुत करेंगे जैसा श्री कृष्णदेव जी उपाध्याय ने भोजपुरी लोकगीतों के लिये किया है। वस्तुतः विन्ध्यप्रदेश शासन की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में इस कार्य को प्राथमिकता मिलनी चाहिये। प्रत्येक शासन का यह कर्त्तव्य है कि अपने क्षेत्र के सांस्कृतिक जागरण का योजनाबद्ध संगठन करे। उस उत्थान में लोक-गीतों के संग्रह को भी अग्रिम स्थान देना चाहिये। बुन्देलखंड और बघेलखंड इन दोनों क्षेत्रों में यदि नियमित प्रयत्न किया जाय और साहित्य-सेवियों से उचित सहयोग लिया जाय, तो अवश्य ही पांच-पांच सहस्त्र गीतों के दो संग्रह तैयार कराये जा सकते हैं। फिर उन गीतों का आलोचनात्मक अध्ययन भी होना चाहिये। लोकगीत भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। उनमें हम कितने ही प्राचीन खोये हुए शब्दों को जनपदीय वातावरण में जीवित देख सकते हैं। हिन्दी शब्दों के इतिहास का कार्य अभी आरम्भिक दशा में है। जनपदीय साहित्य की छानबीन से मूल्यवान् सामग्री प्राप्त होने की आशा है। भाषा के अतिरिक्त, मनोभावों की दृष्टि से और लोक-संस्कृति की दृष्टि से भी गीत विद्वानों के लिये सामग्री की कामधेनु बन सकते हैं। इस देश में गुप्तकाल में अत्यन्त झीने वस्त्रों के लिए भुजङ्गनिर्मोक शब्द प्रचलित

हो गया था। इसका प्रयोग बाण ने अपने हर्षचरित और कादम्बरी में किया है। लोकगीत में वही परम्परा बराबर चली आई है। "साँप काँचरी की ओढ़ चुनरिया" इस वाक्य में लोकभाषा के सांचे में हमें संस्कृत के उसी भुजङ्ग-निर्मोक शब्द के दर्शन होते हैं। इन गीतों में श्रृङ्गारवती नायिका को जिन उपादानों से संवारा गया है, उनमें कोई भी साहित्यिक उन वर्णनों का प्रतिबिम्ब देख सकता है, जो जायसी आदि के काव्यों में पाये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों लोकगीतों के व्यापक स्तर से छन छन कर शृंगार शोभा के उपमान साहित्य में स्वीकृत हुए हैं। पारिवारिक जीवन और आर्थिक जीवन के जो चित्र इन लोकगीतों में सुरक्षित हैं, वैसे सुकुमार और स्पष्ट भावलिखित साहित्य में बिरले ही प्राप्त होते हैं। बुन्देलखंडी किसान को मांते और जमीदारों से उसी प्रकार उत्पीड़ित होना पड़ा है जैसे अन्य जनपदों में उसके भाई-बन्धुओं को। जबकि खेती का उचित लगान उपज का छठा भाग माना जाता था, बुन्देलखंडी किसान को उसका तिहाई भाग चुकाना पड़ता था, जिसके लिए उसकी भाषा में तिहाई शब्द ही रूढ़ हो गया। इस तिहाई के चुकाने की चिन्ता लोकगीतों का विषय था। बुन्देलखंड प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा हुआ देश है। उसके लोकगीतों में भी वह रमणीय वातावरण पाया जाता है। उत्तरभारत के लोकगीतों में एक अत्यन्त प्रसिद्ध वह गीत है जिसमें एक गऊ सिंह से वचनबद्ध होकर अपने बछड़े को दूध पिलाने जाती है, और फिर लौटकर सिंह के पास आ जाती है, और सिंह

उसके सत्य से प्रसन्न होकर उसे अभय दान देता है, और उसके बछड़े को अपना भांजा करके मानता है। यह सुरभि नामक गऊ धर्म और सत्य की साक्षात् मूर्ति है, जिसे लोकमानस ने धरती और आकाश में व्याप्त अखण्ड सत्य के प्रतीक के रूप में निर्मित किया था। चन्द्र और सूर्य इस गौ रूपी सत्य के साक्षी हैं। वृक्ष और वनस्पति उसके सत्यपालन के प्रमाणकर्त्ता हैं।

को तोरो साखी-सुरहिन गउवा, को तोरी देत जमान हो माँ।
चंदा सूरज मोरे साख-सखनियां, बिरछा देत जमान हो माँ॥

इस गीत के इन बोलों को अवधी, मैथिली, भोजपुरी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी किसी भी भाषा में हम पढ़ें, उनका प्रदीप्त धार्मिक ओज सर्वत्र एक-सा है। अवश्य ही इतने व्यापक क्षेत्र में फैला हुआ यह लोकगीत बहुत पुराना होना चाहिए। ज्ञात होता है, इसकी परम्परा उस देव-युग तक चली गयी थी, जब समुद्र मन्थन से कामधेनु गौ उत्पन्न हुई और वही देवताओं की सुरभि गौ बनी। कहा गया है कि देवता न खाते हैं न पीते हैं, केवल अन्न के अमृत भाग के दर्शन से जीवित रहते हैं। सत्य या धर्म ही वह अमृत है, जो देवों की सुरभि गौ के थनों में भरा हुआ दुग्ध है। इसी सत्य रूपी अमृत से सृष्टि के चन्द्र-सूर्य आदि देवता अमर हैं। उन्हीं के सत्य को लोकगीत की गौ अपना साक्षी बनाती है। "चन्दा सूरज मोरे साखसखनियां" यह वाक्य

"चन्द्रसूर्यौ मम साक्ष्य साक्षिणौ" इस मूल संस्कृत वाक्य का अनुवाद जान पड़ता है। आज संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश भाषाओं के वे लोकगीत अतीत की वस्तु हो गये हैं, किन्तु काल-क्रम से विकसित होते हुए उनके रूपान्तर, जनपदीय लोक-साहित्य में सुरक्षित हैं और उनके ये सात्विक भाव उनमें अमिट हैं। सूर्य और चन्द्र सृष्टि का सत्य प्रकाशित करनेवाले प्रजापति के दो चक्षु हैं। सत्य और ऋतु उन दोनों नेत्रों से ही सृष्टि का तथ्य दिखाई पड़ता है और समझा जाता है। इस प्रकार के भावों को वैदिक युग से लेकर आज तक जिस लोक मानस में प्रतिष्टा मिली है, वही सत्यपरायण मन भारतीय संस्कृति का बीज है।

लोकगीतों का लिखित रूप में उद्धार हमारे कर्तव्य का केवल एक अंश है। वस्तुतः तो गीतों का पूरा सौन्दर्य गितारिनों के सुरीलें कण्ठों में देखा जाता है, जब रात्रि की स्तब्ध शान्ति में उनके स्वर कोयल की पञ्चम वाणी के समान ऊंचे उठतें हुए दिशाओं को उल्लास से भर देतें हैं। यह संस्कृति जिस प्रकार जीवन में स्थिर रहे वैसा विधान करना चाहिए। लोकगीतों का अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि जीवन में अभी कविता का नैसर्गिक स्थान अवशिष्ट है। लोकगीतों का ह्रास जीवन के उस नवनीत की समाप्ति ही समझनी चाहिए जिससे मन रसानुभव के योग्य और उसके लिए तरंगित बना रहता है।

ओ

घर-घर होनेवाले संस्कारों की समष्टि का नाम ही पारिवारिक संस्कृति है, और निश्चय ही लोकगीत वे छन्द हैं जिनके द्वारा हम अपने इन संस्कारों में आनन्द उंड़ेलते रहे हैं। आज इन छन्द-पात्रों को सुरक्षित रखने और भरते रहने की आवश्यकता है।

काशी विश्वविद्यालय
वैशाख कृष्ण ६, संवत् २०१३

वासुदेवशरण अग्रवाल

सङ्कलनकर्त्ता का निवेदन

हिन्दुओं का सामाजिक जीवन प्रारम्भ से संगीतमय रहा है। उसके प्रत्येक मङ्गलकार्य में संगीत को मुख्य स्थान दिया गया है। जन्म से लेकर मरण तक सभी संस्कारों के साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। त्योहारों की तो बात ही क्या, कोई घर, कोई वन, कोई खेत और कोई नदी-तट ऐसा न मिलेगा जो कभी गीतों की तान से गूंज न उठा हो। उत्सव, जन्म, विवाह आदि के समय तो गीत गाये ही जाते हैं, पर प्रत्येक श्रमदान के समय भी वे बड़े चाव के साथ गाये जाते हैं। पैदल यात्री गीत गा-गा कर अपनी थकान मिटाते हैं। पालकी ढोनेवाले कहार भी गीत गाकर रास्ता काटते हैं। खेतों पर काम करनेवाले मजदूर तो इन गीतों के गाने में ऐसे तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें परिश्रम का बोध ही नहीं होता। चरवाहे अपने गीतों की गुंजार से जंगल की निर्जनता को सरस बना देते हैं।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने गीतों को अधिक अपनाया है। समस्त संस्कारों तथा त्योहारों के गीत स्त्रियां ही गाती हैं। जब स्त्रियां अपने सुमधुर कंठ से पूर्ण उल्लास के साथ गीत गाती हैं, तब उन्हें सुनकर सचराचर के प्राण तरंगित हो उठते हैं। परन्तु इससे कोई यह न समझे कि लोकगीतों में पुरुष-समाज का कोई स्थान नहीं है। पुरुष-

समाज भी होली-फागें, भजन-भगतें, सैरा-राई आदि गीत समय-समय पर उत्साह के साथ गाते हैं और अपनी कला से जनसमुदाय को मुग्ध करते हैं। इन गीतों से प्राचीन इतिहास के अनेक प्रसंग तथा अनुभव उपलब्ध होते हैं। उनसे कन्याओं तथा वधुओं को अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। क्योंकि उनमें उनके लिए भावी जीवन के विविध चित्र रहते हैं, जिससे उन्हें किस परिस्थिति में क्या करना चाहिए आदि का बोध होता है। गाँव की स्त्रियां जो गीत गाती हैं वे गृहस्थी के सुख-दुःख की मार्मिक बातों से ओतप्रोत रहते हैं। शहरी कवियों की कविता में आदर्शवाद बहुत होता है और स्वाभाविकता कम। पर लोकगीतों में आदर्शवाद न रहकर स्वाभाविकता ही होती है। देहात का कवि कृत्रिमता नहीं जानता। उसके हृदय में जो भाव भरे रहते हैं, उन्हें वह सीधे-सादे शब्दों में कह देता है। इन गीतों में भले ही व्याकरण की अवहेलना की जाती हो और वे साहित्य का रूप भी न समझे जाते हों, परन्तु उनमें भावों की सुन्दर अभि-व्यंजना अनुप्राणित रहती है। वे स्त्री-पुरुषों के हृदयों को द्रवीभूत करके अपनी ओर आकर्षित करने की सहज क्षमता रखते हैं। यथार्थ में काव्य की सफलता का रहस्य छंद और मात्राओं की शुद्धि में नहीं, किन्तु भावों की सफल अभि-व्यंजना में है।

श्री रामनरेशजी त्रिपाठी ने लोकगीतों के सम्बन्ध में बहुत अध्ययन किया है। उन्होंने उनके अनेक संग्रह प्रका—

शित किये हैं तथा उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ सोचा-समझा है। वे लिखते हैं, "हम एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से अपने उन मित्रों से जो कव्वाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहते हैं कि लौटो, अपने अन्त:पुरों को लौटो। कस्तूरी मृग की तरह सुगन्ध स्रोत की तलाश में कहां फिर रहे हो ? स्वर का सच्चा सुख तुम्हारे अन्त:पुर में है। वहां की हृद्तंत्री का तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो, फिर देखो कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है।"

बुन्देलखंडी लोकगीतों के विषय में तो कहना ही क्या है? वे अपने लालित्य तथा भावगरिमा में अपनी सानी नहीं रखते। घर-घर उनका अटूट भंडार भरा पड़ा है। संग्रह करते समय मैं इस सम्भ्रम में पड़ जाता हूं कि किसे लिखूं और किसे छोड़ूं। हर विषय के एक से बढ़ कर एक गीत सुनने को मिलते हैं। मैंने बहुत कुछ संग्रह भी किये हैं, पर लिखते समय उनमें से बहुत थोड़ों को स्थान दे सका हूँ। इस संग्रह में उनके थोड़े-थोड़े नमूने ही दिये हैं। अन्यथा एक एक विषय के गीतों का जुदा-जुदा ग्रंथ बन सकता है। इन अनगढ़ किन्तु भावपूर्ण गीतों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। क्योंकि इन की गहराई में जितनी दूर तक उतरते जाइए, उतना ही अधिक मिठास तथा अनिर्वचनीय आनन्द बढ़ता ही जाता है। "ज्यों ज्यों निहारिये नीरे ह्वै नैनन, त्यों त्यों खरी निकसै सी निकाई" वाली उक्ति इनके

सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। इस संग्रह में मैंने प्रसंगानुसार यत्र-तत्र बुन्देली गीतों के भाव, लालित्य और सरसता पर प्रकाश डाला है, इसलिए यहाँ अधिक लिख कर उसकी पुनरावृत्ति करना उचित प्रतीत नहीं होता है।

लोकगीतों के अध्ययन से जबकि ये गीत निर्माण किये गये होंगे, तत्कालीन समाज के रीति-रिवाजों, विश्वासों तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगाया जा सकता है। बुंदेली गीतों से जाना जाता है कि पूर्वकाल में बुन्देलखंड में परदा का रिवाज बिलकुल नहीं था। लोकगीतों में बहुएं ससुर, जेठ आदि गुरुजनों से खुलकर बात करती हैं। कन्याएं अपने पिता से अपने विवाह के सम्बन्ध में परामर्श करती हैं। यहां तक कि वे अपना गौना कर देने के लिए पिता से स्पष्ट कह देती हैं।

हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि बुन्दलखंड में जितने लोकगीत गाये जाते हैं और उनमें जितने विभिन्न प्रकार के रस तथा भाव पाये जाते हैं, उतने संभवतः अन्य जनपदीय भाषाओं में नहीं मिलेंगे। इसका विशेष कारण है। पहला यह कि यहां का अतीत बहुत गौरवमय रहा है। आदिकवि वाल्मीकि, वेदव्यास, गोस्वामी तुलसीदास, कवीन्द्र केशव, बिहारी, अजमेरी, राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, वियोगी हरि आदि भारत के श्रेष्ठतम कवियों को

उत्पन्न करने का गौरव इस भूमि को प्राप्त है। यहां की भूमि कवि-प्रसविनी है। दूसरा कारण यह है कि यहां की प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ी-चढ़ी है, जो कवित्व शक्ति के लिए सहज ही स्फूर्तिदायक है। तीसरा यह कि बुन्देली बोली बहुत सरस और कहने-सुनने में मधुर है। उसके शब्दों में व्यञ्जनाशक्ति अधिक है। प्रसिद्ध शब्दशास्त्री श्री वासुदेव-शरणजी अग्रवाल लिखते हैं कि "घूंटना, पजाना आदि अनेक क्रियाएं केवल जनपदीय भाषाओं ही में मिलती हैं, खड़ी बोली हिन्दी में नहीं। पजाना शब्द संस्कृत प्रजायते से बना है। 'भौजी पुतवा पजानी' को हिन्दी में कहना चाहें तो कहना होगा 'भौजी ने पुत्र उत्पन्न किया'। लोकगीतों में अनेक शब्द ऐसे मिलते हैं जो अपनी प्राचीन परम्परा रखते हैं और जनपदीय सीमाओं से ऊपर आकर साहित्य में प्रवेश पा सकते हैं।"

बुन्देलखंड के प्रचलित लोकगीतों का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है:—

(१) जन्म समय के गीत—इनमें सोहरें, बधायें, संचत तथा जन्म सम्बन्धी सभी संस्कारों, मुंडन, पासनी आदि के गीत शामिल किये जा सकते हैं।

(२) खेल-कूद के गीत—इसमें लड़कियों के विविध खेलों के गीत तथा नौरता आदि के गीत सम्मिलित हैं।

(३) वैवाहिक गीत—इनमें बनरा, बनरी, रघुपत, गारीं, बीध और विवाह सम्बन्धी समस्त नेंग-दस्तूरों के गीत आते हैं।

(४) शृंगाररस सम्बन्धी गीत—इसमें शृंगार तथा रसिकता सम्बन्धी सभी प्रकार के गीतों का समावेश हो सकता है।

(५) धार्मिक गीत—इनमें मीरा के गीत, भजन, भगतें, तथा रामकृष्ण के प्रेम तथा लीला सम्बन्धी गीतों का समावेश किया जा सकता है।

(६) फागें— ये फागुन के महीने में गाई जाती हैं।

(७) राछेर—ये श्रावण में गाये जाते हैं।

(८) दिवारीं—ये दिवाली के अवसर पर गाई जाती हैं।

(९) सैरा—ये श्रावण-भादों में गाये जाते हैं।

(१०) रसिया, मलारे—ये श्रावण-भादों में गाई जाती हैं।

(११) राई—बारहों महीने गाई जाती हैं।

(१२) भोला के गीत—तीर्थयात्रा के समय गाये जाते हैं।

(१३) श्रमदान के गीत—फसल की बुआई, कटाई आदि के समय गाये जाते हैं।

(१४) खास जातियों के गीत

(१५) मोसम के गीत—इसमें फागें, दिवारीं, कातिक के गीत आदि हैं।

विन्ध्यप्रदेश सरकार के सूचना एवं प्रकाशन अधिकारी द्वारा मुझे उनके बुन्देलखंडी नृत्यगीतों के कुछ चित्रों का उपयोग प्रस्तुत संग्रह में करने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। धर्मयुग सम्पादक श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने भी तत्सम्बन्धी अपने कुछ चित्रों का उपयोग करने की स्वीकृति प्रदान की है। अतः मैं इन दोनों महानुभावों का हृदय से आभार मानता हूं।

इस पुस्तक की रचना में मैंने जिन पुस्तकों तथा मासिक पत्रों से प्रेरणा तथा सहायता ग्रहण की है, उनकी सूची निम्न-लिखित है। उनके लेखकों के प्रति आभार प्रदर्शित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

(१) 'मधुकर' की पुरानी फाइलें—
सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी।

(२) 'लोकवार्त्ता' की पुरानी फाइलें—
सम्पादक श्री कृष्णानन्द गुप्त।

(३) बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास—
लेखक श्री गोरेलाल तिवारी।

(४) ईसुरी की फागें—
संग्रहकर्त्ता श्री कृष्णानन्द गुप्त।

(५) ईसुरी प्रकाश—
संग्रहकर्त्ता श्री गौरीशंकर द्विवेदी।

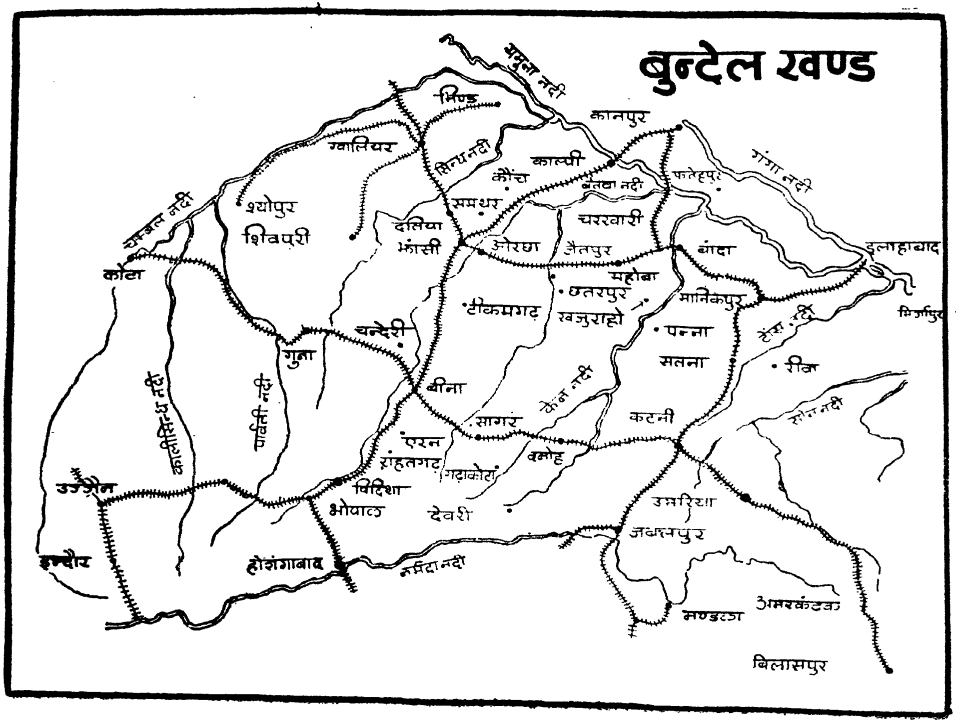
(६) सागर सरोज—
लेखक श्री रा० वा० डा० हीरालाल।

(७) दमोह दीपक—
लेखक श्री रा० वा० डा० हीरालाल।

(८) हिन्दी भाषा का इतिहास—
लेखक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा।

पुरातत्त्व के प्रसिद्ध विद्वान् तथा शब्दशास्त्री डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, पी० एच० डी०, अध्यक्ष, पुरातत्त्व विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने इस पुस्तक की भूमिका लिखना स्वीकार किया, अतः मैं उनका हृदय से आभार मानता हूं।

देवरी (सागर), मध्यप्रदेश
आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा — शिवसहाय चतुर्वेदी
संवत् २०११


बुन्देल खण्ड
यमुना नदी
भिण्ड
कानपुर
ग्वालियर
सिन्ध नदी
काल्पी
कौंच
फतेहपुर
गंगा नदी
बेतवा नदी
चम्बल नदी
श्योपुर
समथर
चरखारी
शिवपुरी
दतिया
झाँसी
ओरछा
जैतपुर
बांदा
इलाहाबाद
कोटा
महोबा
छतरपुर
मानिकपुर
टीकमगढ़
खजुराहो
मिर्जापुर
चन्देरी
टोंस नदी
पन्ना
गुना
सतना
रीवा
बीना
केन नदी
पार्वती नदी
कालीसिन्ध नदी
सोन नदी
सागर
कटनी
एरन
राहतगढ़
गढ़ाकोटा
दमोह
उज्जैन
विदिशा
उमरिया
भोपाल
देवरी
जबलपुर
इन्दौर
होशंगाबाद
नर्मदा नदी
मण्डला
अमरकंटक
बिलासपुर

अनुक्रमणिका

बुन्देलखंड की संस्कृति

बुन्देलखंड नाम का कोई पृथक् प्रदेश नहीं है और न पूर्वकाल में ही राजकीय इकाई के रूप में कभी उसका जुदा अस्तित्व रहा है। बुन्देलखंड से हमारा मतलब कविकुलगुरु कालिदास द्वारा वर्णित उस दशार्ण देश तथा ऐतिहासिक जुझौती से है जो भारत के मध्यभाग में स्थित यमुना, नर्मदा, चम्बल तथा टोंस नदियों द्वारा वेष्टित तथा उनके समीपवर्ती उस भूभाग तक विस्तृत है जहाँ बुन्देलखंडी बोलनेवाले लोग बसते हैं। भाषा ही जनपदों की खरी कसौटी है। एक बुन्देलखंडी बुझौवल में मानो इस प्रदेश की सीमा का निर्धारण किया गया है। वह इस प्रकार है—

भैंस बँधी है ओरछा, पड़ा हुशंगाबाद।
लगवैया है सागरे, चपिया[1] रेवा पार॥

इस बुझौवल का उत्तर 'बुन्देलखंड' ही हो सकता है। इस समस्त भूभाग की संस्कृति समान है। व्रत-उत्सव, तीज-त्योहार, रस्म-रिवाज सभी जगह एक-से मनाये जाते हैं। जो कजलियाँ महोबा, चँदेरी में बोई जाती हैं वही सागर और मंडला में भी। कजली की लड़ाइयाँ ददरीं, फागें, दिवारीं, भगतें, भजन और वैवाहिक गीत सभी जगह एक-से ही सुनने को मिलते हैं। बरात चाहे झाँसी में लगे या नरसिंहपुर में, सभी जगह 'कहना के बड़े कोटिया जिन कोट उठाये' गीत आपको सुनने

१ चपिया = दूध दुहने का मिट्टी का पात्र।

को मिलेगा। आल्हा भी इन सभी जगहों में आप सुनेंगे। छत्रसाल और रानी दुर्गावती की स्मृति आज भले ही धुंधली पड़ गई हो, पर हरदौल लाला के चबूतरे हमारे गाँव-गाँव में बने हुए हैं, जो हमारी सांस्कृतिक एकता को एक सूत्र में बाँधे हुए हैं। ऊँच-नीच कोई जाति हो, विवाहादि मंगल कार्यों के समय हरदौल की पूजा करना उसके लिए अनिवार्य है।

राजकीय तथा सामाजिक स्थिति

बुन्देलखंड की इस भूमि ने प्रागैतिहास काल से अनेक राज्यों के उत्थान, पतन, युद्ध, विप्लव आदि देखे हैं। भारत के अन्य प्रान्तों के समान यहाँ भी आर्यों के आगमन के पहले आदिम जातियों का निवास था। आर्यों का आगमन होने तथा उनका प्रभुत्व स्थापित होने पर आर्यों और अनार्यों का संघर्ष प्रारंभ हुआ। सहवास के कारण क्रमशः द्वेष तथा कटुता कम होती गई। रहन-सहन का प्रभाव एक-दूसरे पर पड़ा। रक्त की विशुद्धता के लिए जो नियम निर्धारित किये गये थे, उनका यहाँ आदर्श तो कायम रहा, पर व्यवहार में शिथिलता आ जाने के कारण मिश्रण होने लगा। यद्यपि आज भी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियों में विशुद्ध रक्त तथा नस्ल के मनुष्य मिलते हैं, तथापि मिश्रण सभी जातियों में पाया जाता है। यहाँ तक कि धर्म-संस्कार, रीति-रिवाज, शिल्प-साहित्य और ललित कलाएँ भी उनके प्रभाव से अछूती नहीं बची हैं। इस भूमि पर मौर्य, गुप्त, हूण, चन्देल, गोंड तथा बुन्देला राजाओं का राज्य रहा है। लोगों में गरीबी हद दरजे की पाई जाती है। यहाँ प्रकृति की देन अच्छी है। वन्य वस्तुएँ फल-फूल ज्यादा परिमाण में होते हैं। परन्तु वनों के सिवा जो कृषि-योग्य भूमि है, वह बहुत हल्के किस्म की है। इससे पैदावार कम होती है। यह प्रदेश पिछड़ा है। शिक्षा का भी अभाव है। विज्ञान द्वारा मिलनेवाले लाभ से यह प्रदेश वंचित रहा है।

आवागमन के साधन भी बहुत परिमित हैं। इन सब कारणों से अधिकांश जनता गरीबी के अभिशाप से ग्रसित है। बुन्देलखंड का कुछ भाग ऐसा है, जो डगैया या घटिया खाला कहलाता है, उसमें केवल मक्का, ज्वार और महुआ ही उत्पन्न होता है। इस भूखंड के लिए लोगों में यह कहावत प्रचलित है कि—

महुवा मेवा बेर कलेवा गुलगट[1] बड़ी मिटाई।
इतनी चीजें खान चहो तो घटिया[2] खालें करो सगाई।

इसी से इस परगने की गरीबी का पता चलता है। इस तरफ के सैकड़ों हजारों स्त्री-पुरुष प्रतिवर्ष फागुन चैत्र में सागर तथा जबलपुर जिलों के ग्रामों में फसल की कटनी कराने आते हैं। इस क्षेत्र में वन्य फलों में महुआ के अतिरिक्त बेर और करौंदा अधिक पैदा होते हैं। इसके विषय में भी एक दोहा प्रचलित है:—

साल करोंटा[3] ले गई राम बाँध गए टेक।
बेर करोंदा जा कहें मरन न देहों एक।

दैवदुर्विपाक से कोई साल खराब पड़ जावे—वहाँ की मुख्य फसल महुआ, ज्वार पैदा न हो और साल बिगाड़ने के लिए ईश्वर (प्रकृति) भी हठ पकड़ जावे, तो भी दैव की रेख पर मेख मारकर वहाँ के बेर-करौंदा यह भरोसा दिलाते हैं कि हम एक को भी न मरने देंगे। ऐसे अवसर पर लोग बेर-करौंदा खाकर ही अपनी गुजर कर लेते हैं।

धर्म और उत्सव

बुन्देलखंड एक धर्मपरायण जनपद है। यहाँ अनेक राजा ईश्वरभक्त तथा धर्मप्रेमी हुए हैं। ओरछा नरेश प्रथम वीरसिंह देव ने, जो जहाँगीर

---

१ गुलगट = महुआ का फल, गुली। २ घटिया खालें = घाटी के नीचे वाला क्षेत्र। ३ करोंटा = लौटना, बदलना, खराब होना।

बादशाह के समकालीन थे, अपने महलों के प्रत्येक प्राङ्गण में तुलसीघरा बनवाये थे, जिनमें तुलसी के पौधे रोपे गये थे और उनकी पूजा की जाती थी। उनके बनवाये मन्दिर उनकी धर्मपरायणता के द्योतक हैं। यह भक्तिकाल था। इस समय राम-कृष्ण की उपासना की प्रधानता थी। भक्तिकाल के पूर्व शिव की उपासना प्रचलित थी। देवगढ़ और खजुराहो के मन्दिर उस युग के स्मारक हैं। काल के प्रभाव से इस प्रान्त में धर्म के स्थान को अंधविश्वास, परम्परागत रुढ़ियों, ग्रामीण देवी-देवताओं ने ले लिया है। लोग भूत-प्रेत, गुनियों तथा औलियों पर अधिक विश्वास रखते हैं। वे अपने सांसारिक अभावों की पूर्ति तथा दुःख-दर्द निवारण के लिए उन्हींकी शरण लेते हैं।

स्त्रियों में धर्म-भावना अधिक है। वे व्रत-उपवास अधिक करती हैं। प्रतिवर्ष कार्तिक मास तथा जब अधिक मास पड़ता है, तब स्त्रियाँ महीने भर जलाशयों पर स्नान करने जाया करती हैं और भक्तिभाव से राधाकृष्ण की पूजा करती हैं। जहाँ कहीं कोई पुराण या भागवत की कथा होती हो, वहाँ जाकर आप देखिए तो श्रोताओं में स्त्रियों की ही संख्या अधिक मिलेगी। जब किसी के घर किसी को माता या मोतीझिरा निकलता है, तब स्त्रियाँ रोगी के अच्छा होने तक प्रतिदिन प्रातः गीले वस्त्र पहिनकर देवी को जल चढ़ाने जाती हैं। अनेक स्त्रियाँ अपने पति, पुत्र या किसी प्रियजन की बीमारी के समय सरें भरने की बोलना कर देती हैं। बीमारी निःशेष होते ही वे गाजे-बाजे के साथ देवीपूजन को जाती हैं। उस समय वे घर से देवी की मढ़िया तक सरें भरती हुई जाती हैं। दोनों हाथ फैलाकर जमीन पर उल्टे लेट जाने को सरें भरना कहते हैं। सारा मार्ग इसी तरह तय किया जाता है। राजगिरि की हरसिद्धि देवी के मन्दिर पर मेले के समय आसपास के गाँवों से अनेकों स्त्रियाँ इसी तरह सरें भरती हुई आती हैं। उनके विश्वास, परिश्रम तथा धर्म-परायणता को देखकर चकित होकर रह जाना पड़ता है।

कुँवार तथा चैत्र की नवदुर्गा के समय गाँव-गाँव अनेकों जगह जवारे रखे जाते हैं। नौ दिन तक 'भगतों' की धूम रहती है। साहुन में कजलियाँ बोई जाती हैं, जो भाद्रकृष्ण प्रतिपदा के दिन नदी तालाब पर ले जाकर खोंटी जाती हैं। इन गेहूँ के पौधों को लोग एक-दूसरे को देकर मिलते हैं और परस्पर प्रेम-भाव की याचना करते हैं। स्त्रियाँ तीजा, गणेश, ऋषिपंचमी, संतान सातें, गजगौरी का व्रत रखती हैं। फाग, दिवाली, साहुन सभी जगह एक-सा मनाया जाता है। ग्रहण-काल को लोग भगवान पर आई विपत्ति अनुभव करते हैं। ग्रहण-काल में सूतक मानते हैं और ग्रहण के प्रभाव से बचाने के लिए खाद्यसामग्री तथा जलपात्रों में तुलसीपत्र डालते हैं। ग्रहणमोक्ष होने पर दान देते तथा स्नान करते हैं।

अशिक्षित निम्न वर्ग के लोग—गोंड, भील, सौंर सहरिया आदि अनगढ़ पत्थरों तथा वृक्षों को पूजते हैं। कहा जाता है कि इन लोगों में से अनेक लोगों के सिर पर डोंगर बाबा, सिद्ध बाबा आदि आते हैं। जब वे देवावेश में होते हैं, तो लोग उनसे प्रश्न पूछते हैं और वे देवताओं की ओर से उत्तर देते हैं। इन भावों में कहाँ तक सत्यता है, नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह सत्य है कि पूजा-अर्चना की इन विधियों में आर्य-अनार्य दोनों संस्कृतियों का दर्शन मिलता है।

दशहरे के अवसर पर बुन्देलखंड के राजा उन्मत्त भैंसों का शिकार किया करते हैं। दतिया में महिषासुरमर्दनी के सम्मुख दशहरे के दिन दो-तीन दर्जन भैंसे मारे जाते हैं। अक्षय तृतीया के दिन अपनी सहेलियों से स्त्रियाँ उनके पति के नाम पूछती हैं।

खेलकूद और शौक

लड़के-लड़कियों, युवकों तथा वृद्धों के, उनकी अवस्था और रुचि अनुरूप, विविध खेल होते हैं। छोटे बच्चे गुड्डियों, मिट्टी के खिलौनों से

खेलते हैं। उनसे कुछ बड़ी उम्र के लड़के लकड़ी तथा सोटों से बनी गाड़ियों, रँहचकुवा, गेंड़ी और झूला आदि का खेल खेलते हैं। बड़ी उम्र के लड़के गिल्लीडंडा, खों-खों, कबड्डी, गढ़ागेंद आदि खेलते हैं। वे पतंगें तथा बुलबुलें भी उड़ाते हैं। युवकगण कबड्डी खेलते हैं। प्रौढ़ तथा वृद्धजन अपने मनोरंजन के लिये चौपर, सोलह गोटी, शतरंज खेलते हैं। चौपर का अधिक प्रचार है। वयस्क लड़कियाँ नौरता नामक एक अत्यन्त दिलचस्प तथा सुरुचिपूर्ण खेल खेलती हैं, जिसका पूर्ण विवरण इसी पुस्तक में दिया गया है।

तोता मैना तथा कबूतर पालने का शौक बहुत लोगों को होता है। अनेक लोग कबूतर पालते और उन्हें लड़ने की शिक्षा देते रहते हैं। अवसर पर जब कबूतरों की लड़ाई होती है, तब विजयी पक्ष बहुत खुशी मनाता है। वयस्क लोगों की कुश्ती और दंगल भी समय-समय पर होते रहते हैं।

आचार-व्यवहार और भावनाएँ

इस प्रदेश में निरक्षरता तथा गरीबी अधिक है। सारी आबादी देहातों में बसती है। शहर बहुत थोड़े हैं और जो हैं, उनकी जनसंख्या ५०-६० हजार से अधिक नहीं है। आवागमन के साधन बहुत सीमित हैं। इस कारण शहरी सभ्यता तथा विज्ञान द्वारा प्राप्त लाभों से यह प्रदेश वंचित रहा है। जहाँ पुरुषों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं, वहाँ स्त्री-शिक्षा की चर्चा करना निरर्थक है। उच्च जाति की स्त्रियों में परदा चलता है। बालविवाह का यहाँ खूब जोर है, परन्तु कुछ उच्च जातियों को छोड़कर दहेज की कुप्रथा यहाँ नहीं है। मजदूरी निम्न वर्ग की स्त्रियाँ ही करती हैं।

इस प्रान्त में हिन्दू, मुसलमान हिलमिल कर रहते हैं। वे एक-दूसरे के धार्मिक उत्सवों में रुचि के साथ भाग लेते हैं। मुसलमान लोग

मुस्लिम धर्म की खास बातों को छोड़कर अन्य सभी बातों में हिन्दू प्रथाओं का अनुसरण करते हैं। मुसलमान स्त्रियाँ तीजा, हरछट आदि का व्रत करती हैं तथा माता निकलने पर देवी को जल चढ़ाने जाती हैं।

शिक्षा की कमी के कारण अशिक्षित जातियों में जो दोष होते हैं वे यहाँ की अधिकांश जातियों में पाये जाते हैं। लोग सहयोग तथा संगठन से काम करना नहीं जानते हैं। अन्धविश्वास उनकी रग-रग में जमा हुआ है। बाहरी दुनिया से वे अपरिचित होते हैं। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद इस शोचनीय स्थिति से उनका उद्धार करना शासन का कर्त्तव्य है।

वेशभूषा

बुन्देलखंड का पहनाव सादा है। लोग प्रायः घुटनों तक धोती और शरीर पर आधी बाँहोंवाली बंडी या फतूमी पहिनते हैं। कांधे पर एक पिछौरा या गमछा डाले रहते हैं, जिसे जरूरत के समय ओढ़ या पहिन भी लेते हैं। सिर पर अँगोछा बांधते हैं। कोई-कोई दो पल्ले वाली टोपी भी लगाते हैं। जाड़े के दिनों में समर्थ लोग रुई भरी मिरजई या अँगरखा पहिनते हैं। पुराना रईसी तथा रजवाड़ी रिवाज घुटनों तक अँगरखा, पाँव में सराई और सिर पर पगड़ी बाँधने का था। परन्तु अब कुछ समय से पगड़ी का स्थान साफे ने ले लिया है। शहरों तथा कस्बों के लोग कोट, कमीज पहिनने लगे हैं। यहाँ पान खाने तथा तमाखू पीने का अधिक रिवाज़ है।

स्त्रियाँ पहले लहँगा, लुगरो तथा पिछौरा का उपयोग करती थीं। छीपा तथा रंगरेजों से चुनरियाँ छपवा कर ओढ़ती थीं। देवरी के कोरी कोष्टी लाल रंग की धारीदार पटी बनाकर झाँसी टीकमगढ़ तरफ भेजते हैं, इसमें नीचे हरे रंग की मोटी किनारी रहती है। यह वस्त्र

वहाँ लहँगा बनाने के उपयोग में लाया जाता है। दतिया, झाँसी तथा टीकमगढ़ क्षेत्रों में आज भी लहँगे का अधिक प्रचार है। परन्तु शेष सभी जगहों में अब धोती या साड़ी का उपयोग होने लगा है। स्त्रियाँ जेवर बहुत पहनती हैं। दतिया में तो पाँच सेर तक के पैजनें पहिने जाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे अब झाँझ, लच्छे का प्रचार बढ़ रहा है। हाथों में काँच की चूड़ियाँ, ककना, दोहरी, चूरा, पटेला; गले में लल्लरी, बिचौली, तबिजियाँ; कानों में कर्णफूल, तरकला, बालियाँ और झुमके तथा सिर पर बिंदियाँ, शेषफूल आदि पहिनती हैं। कोई-कोई स्त्रियाँ दाँतों में सोने की कीलें जड़वाती हैं। हाथ, पाँव, ठुड्डी आदि पर गोदना गुदवाती हैं।

ललित कलाएँ

प्राचीन समय में बुन्देलखंड में भवन-निर्माण तथा संगीत-कला बहुत उन्नति पर थी। देवगढ़ तथा खजुराहो के मन्दिर पाँचवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक की शिल्प-कला के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। मध्य-काल में इस कला में कुछ अवनति हुई। इस युग की सर्वोत्तम इमारत दतिया के पुराने महल हैं। इन्हें महाराज प्रथम वीरसिंहजू देव ने बनवाया था। कला-मर्मज्ञ तथा इतिहास के अन्यतम विद्वान हैवैल साहब ने इस इमारत को मध्यकाल की सर्वोच्च इमारत ठहराया है। इस इमारत को बनानेवाले कारीगर बुन्देलखंडी ही थे। ओरछा तथा दतिया के मन्दिर भी दर्शनीय हैं। ये मन्दिर प्राचीन तथा मध्यकाल के मिश्रित नमूने हैं। चन्देलकालीन विशालतम ताल तो प्रसिद्ध ही है। कुण्डलपुर और पपोरा में जैनियों के बड़े-बड़े अनेकों मन्दिर बने हैं। अहार में भगवान शांतिनाथ की १८ फुट ऊँची एक भव्य मूर्ति है। इस मूर्ति का सौष्ठव और उसके अंग-प्रत्यंगों की रचना दर्शनीय है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति बहुत महत्वपूर्ण है। यह मूर्ति संवत् १२३७ में चन्देल नरेश परमर्द्धिदेव के राजत्व काल में बल्हण के वास्तुशास्त्र-

विशारद पुत्र पापट ने निर्माण की थी। सागर जिले के एरन नामक ग्राम में जो जय-स्तंभ बना है, उसे देखते हुए आश्चर्य होता है कि इस युग में क्रेनों के अभाव में इतने बड़े वजनी पत्थर इतने ऊपर कैसे चढ़ाये गए होंगे। बुन्देलखंड के अन्तर्गत बने हुए अनेकों बड़े-बड़े दुर्जय किले, मन्दिर, महल आदि यहाँ की प्राचीन शिल्पपटुता की साक्षी दे रहे हैं।

प्राचीन चित्र, जो राज-दरबारों या अन्य लोगों के पास पाये जाते हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी बनावट, रंगों के मिश्रण, पोशाक पहिनाने की कुशलता और भावों की स्वाभाविकता की दृष्टि से वे किसी भी देश के अच्छे चित्रों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। बारीक-से-बारीक तथा सुन्दर लेखन कला के अच्छे-से-अच्छे नमूने यहाँ प्राप्त होते हैं।

बुन्देलखंड राजाओं का प्रदेश था। यहाँ संगीत खूब फूला-फला है। राजाओं के दरबार में अच्छे-अच्छे गवैये और वाद्यकार मौजूद रहते थे। राज दरबारों में ऐसे-ऐसे कुशल नर्त्तक तथा वाद्यकार रहते थे कि उनकी कला को देखने के लिये दूर-दूर के श्रीमान् तथा संगीत-प्रेमी आया करते थे। दतिया नरेश स्व० भवानीसिंहजी के समय में कुदऊँसिंह नामक एक प्रसिद्ध पखावज बजानेवाला था। कहते हैं, शराब पिलाकर उस पर एक मस्त उन्मत्त हाथी छोड़ा गया था। परन्तु उसने गजकर्ण पखावज बजा कर उसे वश में कर लिया था। बुन्देलखंड तो गीतों का घर है। यहाँ की स्त्रियाँ हर समय अपने कलकंठ से गीतों की गुंजार किया करती हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हींके गीतों का परिचय देने के लिये लिखी गई है। बुन्देलखंड में शिल्प कला तथा संगीत का अतीत गौरवमय रहा है।

अन्य कलाएँ

इस प्रदेश में लोहार, बढ़ई, कुम्हार, कोरी, बसोर आदि सर्वत्र हैं, जो अपने अपने पेशे की चीजें बनाते हैं। कई स्थानों पर बन्दूक तथा तलवार

बनाने वाले कारीगर आज भी मौजूद हैं। गड़रिये अच्छे कम्बल बनाते हैं। वे यद्यपि नरम नहीं होते, फिर भी काफी गरम होते हैं। अंग्रेजी शासन काल में बुन्देलखंड का रियासती विभाग हथियारों के लाइसेंस से मुक्त था। फलतः प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छानुसार बंदूक, तलवार रख सकता था। शायद यही कारण है कि यहाँ के लोगों में साहस अधिक पाया जाता है।

उद्योग-धंधों के विकास के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, वे सभी इस भूमि में मौजूद हैं। काफी जमीन है, जंगल है, नदियाँ हैं। अन्वेषण करने पर अनेक खनिज पदार्थ भी यहाँ मिल सकते हैं। केवल प्रयत्न की कमी है। अब देश स्वतंत्र हो गया है, अतः राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह इस पिछड़े भूभाग के सर्वतोमुखी विकास के लिए प्रयत्न करे।

बुन्देलखंड और बुन्देलखंडी भाषा

बुन्देलखंड

इतिहास प्रसिद्ध 'यजुर्होति' प्रदेश जो गुप्तकाल में 'जेजाक भुक्ति' नाम से प्रसिद्ध था और जो विन्ध्याटवी में स्थित होने के कारण विन्ध्येलखंड के नाम से भी सम्बोधित हुआ है—वही प्रदेश लगभग चार सौ वर्ष से बुन्देलखंड कहलाने लगा है। यह प्रदेश आर्य सभ्यता के आगमन के पूर्व अनार्य कालीन संस्कृति के प्राचीनतम अभिनयों की लीला भूमि रहा है। पांचाल देश के इतिहास को छोड़ कर भारत के किसी देश का इतिहास बुन्देलखंड (जेजाक भुक्ति) की प्राचीनता की होड़ में नहीं टिक सकता है। 'जेजाक भुक्ति' 'जिझौती' आदि इस प्रदेश के नामों का उद्गम 'यजहूति' शब्द से हुआ है। इस 'यजहूति' शब्द की व्युत्पत्ति तथा विवरण जानने के लिए वैदिक साहित्य के ब्राह्मणग्रन्थों तथा स्मृतियों के अनुशीलन की आवश्यकता होगी। भारद्वाज, याज्ञवल्क आदि स्मृतिकारों के आश्रमों का उल्लेख बुन्देलखंड की सीमाओं के अन्तर्गत आता है। बहुधा स्मृतियों में देश की सीमाओं और वहाँ के निवासियों के आचार-व्यवहार आदि का वर्णन रहता है।

वैदिक तथा स्मृतिकाल के पश्चात् रामायण तथा महाभारतकाल आता है। रामायण के अनुसार बालमीकि, अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य ऋषियों के आश्रम इसी प्रदेश के अन्तर्गत थे। प्रयाग से लेकर चित्रकूट के मार्ग में मिलनेवाले ग्रामों, वनों तथा भूखंडों का वर्णन वालमीकिजी ने रामायण में किया है। रामायण से जाना जाता है कि उस समय इस प्रान्त में शकटों तथा नौकाओं द्वारा व्यापार

होता था। भोजन के लिये अनाज के अतिरिक्त जंगली फल, मूल और मेवे उपयोग में लाये जाते थे। क्षत्रिय लोग शिकार खेलते थे और मांस तथा मछली खाते थे। शिल्प-कौशल में रामायण वर्णित नभचुम्बी धवल धाम, हेमकोट, नाना प्रकार के यान-रथ, शस्त्रास्त्र-धनुष, वाण, शक्ति-तोमर, मुद्गर, कृपाण आदि, सुन्दर वस्त्र, रत्न-जटित आभूषण, और वन-उपवनों के विवरण उपस्थित किये जा सकते हैं। रामायण के आलोचनात्मक अध्ययन से बुन्देलखंड के पूर्व इतिहास की वहुत कुछ सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

महाभारत-काल में पांडवों के नाना कुन्तलपुर के अधीश्वर थे। यह स्थान वर्तमान-काल में 'कुन्तबार' नाम से प्रसिद्ध है। सहस्त्राबाहु की राजधानी भी इसी प्रान्त में थी। निषध देश के राजा नल की राजधानी नलपुर, जो अब नरवर नाम से प्रख्यात है, अपनी प्राचीनता तथा विशाल दुर्गों के लिये आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये खड़ी है। श्रीकृष्ण के फुफेरे भाई शिशुपाल की राजधानी चन्देरी बुन्देलखंड के मध्यभाग में स्थित है।

इतिहास प्रसिद्ध काल्पी नगरी जो पौराणिक काल से लेकर बौद्ध, मौर्य, गुप्त तथा अंग्रेजी शासन-काल से अनेक घटनाओं तथा युद्धों की रंगभूमि रही है, भगवान वेदव्यास की जन्मभूमि है। भगवान् श्रीकृष्ण के वंशज साम्ब ने दुर्वासा ऋषि के शाप से मुक्त होने के लिये सूर्य की उपासना इसी काल्पी क्षेत्र में की थी। काल्पी का पौराणिक नाम 'कालप्रिय' था। आज भी वहाँ पर सूर्य-मन्दिर अपनी भग्नावस्था में मौजूद है। महाकवि भवभूति ने उत्तर रामचरित नाटक की प्रस्तावना में अपनी कालप्रिय यात्रा का उल्लेख किया है। भगवान शंकर के पुत्र तथा देवसेना के अधिनायक श्री सोमकार्तिकजी का जन्म देवगढ़ में हुआ था। महाकवि कालिदासजी ने भी इस प्रदेश की नदियों-दशार्ण, वेत्रवती आदि का वर्णन अपने मेघदूत काव्य में किया है।

पौराणिक काल के उपरान्त बौद्ध तथा जैन काल प्रारम्भ होता है। जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ स्वर्णगिरि (सोनागिर) बुन्देलखंड के अन्तर्गत दतिया राज्य में है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश के पचरई पपौरा, अहार, कुण्डलपुर और चन्देरी आदि अनेक स्थानों में इनके अनेकों विशाल मंदिर हैं। बौद्ध काल में जुझौती वृहत्तर बुन्देलखंड का एक महत्वपूर्ण अंग था। इसके अन्तर्गत भेलसा तथा साँची में प्राचीनतम स्तूप विद्यमान हैं। कौशाम्बी में भगवान बुद्धदेव ने बहुत समय तक निवास किया था–अनेक चातुर्मास बिताये थे। उदयन वत्स ने इस जगह पर भगवान बुद्ध की लाल चंदन की सर्वप्रथम प्रतिमा स्थापित की थी। आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पहले सागर जिले के एरन नामक नगर को महाराज समुद्रगुप्त ने अपना स्वभोग नगर बनाया था। एरन स्थित वराहमूर्ति, विष्णु-मन्दिर तथा जयस्तम्भ में तत्कालीन शिलालेख अंकित हैं। जबलपुर जिले की रूपनाथ की चट्टानों पर अशोक की प्रशस्ति खुदी है। इसीकी छठवीं शताब्दी में सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय जुझौती में चन्देल (चन्द्रात्रेय) नामक एक प्रभावशाली राजवंश का अभ्युदय हुआ। इसकी राजधानी खंजरपुर में, जिसे आजकल खजुराहो कहते हैं, थी। पश्चात् चन्देलों ने अपनी राजधानी खजुराहो से हटाकर महोत्सवपुर (महोबा) में बनाई। पुराण प्रसिद्ध कालिंजर तथा अजयगढ़ के दुर्गम दुर्ग इन्हींके समय में बनाये गये थे। इसके सिवा आठ और भी बड़े-बड़े दुर्ग उन्होंने बनवाये। चन्देल-कालीन मंदिर, दुर्ग तथा बड़े-बड़े तालाब इतिहास प्रसिद्ध हैं। खजुराहो के भीमकाय मन्दिरों के भग्नावशेष आज अपनी जीर्ण-शीर्ण दशा में होने पर भी उनके निर्माण-कर्त्ताओं के प्रभुत्व तथा यश के साक्षी बने हुए हैं।

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में काशी के गहरवार वंश की एक शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। इसने पहले जालन के मुहीनी ग्राम को अपना निवास-स्थान बनाया। वहाँ से उन्होंने इतिहास प्रसिद्ध गढ़-

कुंडार नामक किले पर अपना अधिकार जमाया। इस तरह उन्होंने ओरछा राज्य की नींव डाली। यह वंश बुन्देला कहलाया। इस वंश की विविध शाखाओं का अधिकार बुन्देलखंड के अधिकांश भाग पर अन्त तक बना रहा। बुन्देल-कालीन किले, मन्दिर, महल, स्मारक तथा समाधियाँ ग्वालियर से लेकर रीवाँ तक सर्वत्र मिलती हैं। इस प्रकार इस भूखंड ने वैदिक तथा पौराणिक काल से लेकर मौर्य, गुप्त, हूण, नाग, चन्देल, बुन्देला, यवन और अंग्रेजी राज्यों के उत्थान तथा पतन को देखा है।

वृहत्तर बुन्देलखंड की सीमा समय-समय पर राज्यों की सत्ता के अनुसार घटती-बढ़ती रही है। स्वनाम धन्य महाराज छत्रसाल के समय की बुन्देलखंड की सीमा नीचे लिखे अनुसार मानी जाती है।

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू होंस॥
उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सु बहति है।
प्राची दिशि कैमूर सोन काशी सु लसति है॥
दक्खन रेवा विन्ध्याचल तन शीतल करनी।
पश्चिम में चम्बल चंचल सोहति मन हरनी॥
तिन मधि राजे गिरि वन सरिता सहित मनोहर।
कीर्ति-स्थल बुन्देलन को बुन्देलखंड वर॥

उपरिलिखित सीमा के अनुसार वर्तमान उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन, बाँदा और हमीरपुर जिले; ग्वालियर राज्य के भिंड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़ तथा भेलसा जिले; ओरछा, दतिया, समरथ, पन्ना, चरखारी, विजावर, अजयगढ़, छतरपुर आदि बुन्देलखंडी ३६ रियासतें—जो अब विन्ध्यप्रदेश में विलीन हो चुकी हैं; मध्य प्रदेश के उत्तर के

जिले सागर, जबलपुर, होशंगाबाद; तथा भोपाल राज्य बुन्देलखंड की सीमा के अन्तर्गत आता है ।

लाल कवि लिखित महाराज छत्रसाल के इतिहास से जाना जाता है कि इस प्रबल प्रतापी महाराज के समय बुन्देलखंड की सीमा जबलपुर को लाँघकर मंडला जिले तक तथा भोपाल को लाँघकर भेलसा, सिरोंज, साँची और सीहोर तक पहुंच गई थी । पूर्व में समग्त बघेलखंड का भूभाग, जो विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर के द्वार को छूता था, छत्रसाल की अधीनता में आ गया था । च देलकाल में महाराज कीर्तिवर्मा तथा महाराज मदन वर्मा के राजत्व काल में उसका विस्तार प चिम की ओर ग्वालियर राज्य की पश्चिमी सीमा को लाँघकर राजपूताना तक, पूर्व में काशी तक तथा दक्षिण में मालवा तक फैल गया था ।

सुकवि तथा वीर प्रसविनी इस बुन्देलखंड की भूमि को प्रकृति ने उदारतापूर्वक अनोखी छटा प्रदान की है । यहाँ पग-पग पर कहीं सुन्दर सघन वन और कहीं शस्यश्यामला भूमि दृष्टिगोचर होती है । विन्ध्य-पर्वत की श्रेणियाँ यत्र-तत्र अपना सिर ऊँचा किये खड़ी हैं । यमुना, बेतवा, धसान, केन, नर्मदा आदि कलकल-नादिनी सरिताएँ उसके भूभाग को सदा सींचती रहती हैं । वन-उपवन नाना तरह के फल-फूलों से सदा लदे रहते हैं । सिंह, तेंदुआ, रीछ, स्वर्णमृग (चीतल) आदि नाना जाति के पशु पक्षी स्वच्छन्द विचरते हैं । सुनील जल से भरे हुए अनेकों सरोवर प्रकृति के सौन्दर्य को शतगुणा बढ़ाते हैं । यहाँ प्रकृति अपने सहज सुन्दर रूप में अवतरित हुई है । इस प्रान्त के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखकर मानव-हृदय अपने आप आनन्द-विभोर हो उठता है । वर्षा तथा शरद् काल में तो यहाँ के दृश्य ऐसे मनमोहक हो जाते हैं कि 'गिरा अनयन, नयन बिन वानी' की बात चरितार्थ हो उठती है ।

बुन्देलखंडी भाषा

बुन्देलखंडी भाषा बहुत ही श्रुतिमधुर और सरस है। बोली की मिठास के लिए लोग ब्रजभाषा की बहुत सराहना करते हैं, परन्तु बुन्देलखंडी शब्दों में जो विनम्रता, लोच तथा सुकुमारता है उसके सामने ब्रजभाषा का लालित्य फीका पड़ जाता है। नीचे इसके कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं:—

भारतीय अन्य भाषाओं में बैठने के लिए लोग 'आइये, पधारिये, तशरीफ रखिए आदि' कहते हैं। परन्तु इसके लिए बुन्देलखंडी लोग कहते हैं–'बिराजवो होय जू।' देखिए, इन शब्दों में कितनी कोमलता, विनय तथा आदर का भाव भरा हुआ है। 'आपने कहा था' इसके लिए बुन्देली में 'आपकी मरजी भई हती' कहा जाता है। इसी तरह जब लोग जाने लगते हैं तो कहते हैं–'अब आज्ञा दीजिए।' इसके उत्तर में कहा जाता है–'जरा और बैठिये, थोड़ा और तशरीफ रखिये'। पर इस अवसर पर बुन्देलखंडी कहते हैं– 'कैसे बिन्ती करूँ, तनक और बिराजवो होय।' बुन्देलखंडी बोली इसी प्रकार के मधुर तथा शिष्टतापूर्ण शब्दों से भरी हुई है। स्वर्गीय मुन्शी अजमेरी का कहना था कि "बुन्देली ब्रजभाषा से अधिक मधुर हैं और ब्रजभाषा के माधुर्य का तो कहना ही क्या ?"

बुन्देलखंडी तथा ब्रजभाषा दोनों की उत्पत्ति शूरसेनी या पश्चिमी हिन्दी से हुई है। ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली से बुन्देली का निकट सम्बन्ध है। इसी कारण इन दोनों भाषाओं का उस पर प्रभाव भी अधिक पड़ा है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा के अनुसार जनपदों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है— (१) शूरसेन (ब्रज तथा बुन्देली का क्षेत्र) (२) पांचाल (कन्नौजी भाषा का क्षेत्र) (६) कोशल और काशी (भोजपुरी क्षेत्र) (४) कुरुक्षेत्र (कुरु भाषा का क्षेत्र)। इन

सब भाषाओं को बुन्देली की बहनें कहना अनुचित न होगा, क्योंकि उनमें अपने-अपने भूभाग की प्राकृतिक स्थिति, सांस्कृतिक भेद और निजी विशेषताओं के सिवा बहुत-कुछ सादृश्यता है। बुन्देली भाषा विशुद्ध रूप में झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, चरखारी, दतिया, बिजावर, सागर, दमोह आदि में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप नरसिंहपुर, जबलपुर, मंडला, बालाघाट तथा भोपाल में पाये जाते हैं। आजकल जनपदीय बोलियों के विशुद्ध रूप के दर्शन शहरों में नहीं हो सकते हैं। उसके सहज दर्शन तो देहात ही में होते हैं। बुन्देलखंडी का विशुद्ध रूप आज भी उसके प्राचीन लोकसाहित्य—लोकगीतों, कहावतों, कहानियों आदि में पाया जाता है। बोलचाल की प्राचीन तथा वर्तमान बुन्देलखंडी में काफी हेर-फेर हो गया है। ब्रज के सम्पर्क में रहनेवाली बुन्देलखंडी पर स्वाभाविक रूप से ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार दक्षिण में भी वहाँ की भाषाओं का प्रभाव बुन्देलखंडी पर पड़े बिना नहीं रहा है। बाँदा जिले से आगे बढ़ें तो बघेली शुरू हो जाती है। अतएव बाँदा और उसके आसपास की बुन्देली पर बघेली का प्रभाव अनिवार्य है। कई अवस्थाओं में क्रियाएँ वही रही हैं, परन्तु शब्दों के अर्थ और उनके उपयोग में बहुत हेर-फेर हो गया है। भीतर के ऐसे क्षेत्र में, जहाँ अन्य भाषाओं का सम्पर्क नहीं रहा हैं वहाँ उसका विशुद्ध रूप आज भी मौजूद है।

ब्रजभाषा तथा बुन्देलखंडी दोनों यमल बहनें हैं। अतएव उनमें बहुत-कुछ सादृश्य रहने पर भी वे अपनी-अपनी विशेषताएँ, निजी शैली तथा अपना जुदा व्यक्तित्व रखती हैं। 'चौरे छोरा नाँय मान्तु' और 'कायरे मोंड़ा मानत नैयाँ' में ब्रजभाषा तथा बुन्देलखंडी बोली का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। ब्रजभाषा में लड़के-लड़कियों के लिये छोरा-छोरी और बुन्देली में मोंड़ा-मोंड़ी कहते हैं।

नीचे कुछ वाक्यों द्वारा हम खड़ी बोली हिन्दी, बुन्देलखंडी तथा बघेली का अन्तर बताने की चेष्टा करते हैं:—

हिन्दी	बुन्देलखंडी	बघेली
१ मैं जाता हूँ	हम जात हैं	हम जाइत हैं
२ मै जा रहा हूँ	हम जा रये हैं	मैं जात हों
३ मैं जाता था	हम जात हते	हम जात रहन तें
४ मैं जा रहा था	हम जा रये ते	हम जाते रइन हैं
५ मैं गया था	हम गये हते	हम गयन ते
६ वह जाता है	बो जात है	वा जात रहा है
७ वह जायगा	वो जैहै	वा जाइ
८ तुम जाते हो	तुम जात हो	तुम जइहा हो
९ उसे जाने दो	उए जान दो	वही जाय दय
१० मुझको भी दो	हमई खो देव	मोहू का द्या
११ हमें क्या करना है	हमें का करने है	हमही का करय खै
१२ जब मैं जाऊँ तब तुम चलना	जब हम जाँय तब तुमई चलियो	जब हम जाइ तब तुमहू चल्या
१३ तुम्हें कौनसी वस्तु प्रिय लगती है ?	तुमें कौन चीज नोनी लगत है ?	तोहका कौन चीज पियार है ?
१४ आप कहाँ जायेंगे ?	अपुन कितै जैहो ?	अपना कहाँ जाव ?

हिन्दी	बुन्देलखंडी	बघेली
१५ आइये, बैठिए	पधारो, बिराजवो होय जू	अई बइठी
१६ हम उससे कह देंगे	हम बासें कै दँबू	हम उन्से कहि देब
१७ वह कभी न आयगा	वो कबऊँ नै आहै	उन्हीं कभू नहीं आने
१८ आप कहाँ जा रहे हैं ?	अपुन कितै जा रये ?	अपना कहाँ जइत लाग ?
१९ अरे यहाँ तो आओ	अरे इतै तो आव	थोरका यहाँ तो अई
२० हमें जाने दो	हमें जान दे	हमईं जाँय दया

बुन्देली भाषा के कारक, पुरुष तथा वचनों के प्रयोग नीचे दिये जाते हैं। बुन्देली के कारक प्रायः हिन्दी के समान ही होते हैं।

कारक	विभक्तियाँ
कर्त्ता	ने, नें
कर्म	खाँ, खों
करण	से, सें, सों
सम्प्रदान	को, खों, लाने
अपादान	से, सें, सों
सम्बन्ध	कौ, के, की
अधिकरण	में, पै
सम्बोधन	अर, रे, हो

सर्वनामों के रूप

	उत्तमपुरुष एकवचन		उत्तमपुरुष बहुवचन
	(मैं मैं)		(हम)
कर्ता	मैंने,	मोने	हमने, हमनें
कर्म	मोय,	मोखों	हमखों, हमको, हमखां
करण	मोसें,	मोसों	हमसें, हमसों
सम्प्रदान	मोखों,	मोरे लाने	हमखों, हमारे लाने, हमाये लाने
अपादान	मोसें,	मोसों	हमसें, हमसों
सम्बन्ध	मोखों,	मोरे, मोरी	हमखों, हमाओ, हमारो
अधिकरण	मोमें,	मो पै	हममें, हम पै

यहाँ के प्रायः सभी मनुष्य 'हम' के लिये 'अपन' 'अपुन' शब्द का प्रयोग करते हैं और 'मैं' के लिये 'हम' कहते हैं।

	मध्यमपुरुष एकवचन	मध्यमपुरुष बहुवचन
	(तू)	(तुम)
कर्ता	तूने, तुमने	तुमने
कर्म	तुमखों, तोखों	तुमखों
करण	तो सें	तुमसें
सम्प्रदान	तोरे लाने	तुमाये लाने
अपादान	तोसें	तुमसें

	मध्यम पुरुष एकवचन	मध्यमपुरुष बहुवचन
	(तू)	(तुम)
सम्बन्ध	तुमाओ, तुमाई	तुमाओ, तुमाई
अधिकरण	तोमें, तो पै	तुम में, तुम पै

नोट:—मध्यम पुरुष के एकवचन और बहुवचन के प्रयोग प्रायः एक समान रहते हैं।

	अन्यपुरुष एकवचन	अन्यपुरुष बहुवचन
	(वे, वो, ऊ)	(उन)
कर्त्ता	ऊने, ओने	उनने
कर्म	ऊखों, ओखों	उनखों
करण	ऊसें, ओसें	उनसें
सम्प्रदान	ऊखों, ऊके लाने	उनके लाने
अपादान	ऊसें, ओसें	उनसें
सम्बन्ध	ऊको, ऊके, ऊकी	उनको, उनकी
	ओको, ओके, ओकी	उनखों
अधिकरण	ऊमें, ऊपै, ओमें, ओ पै	उनमें, उन पै

नोट:—नर्मदा के दक्षिण की ओर नरसिंहपुर, होशंगाबाद तथा भोपाल राज्य में अन्यपुरुष में 'उन' की जगह 'बिन' का प्रयोग किया जाता है और कारकों के अनुसार 'बिन' के रूप बिनसें, बिनके लाने, बिन पै, बिनखों आदि कहे जाते हैं।

भारतीय भाषाओं में ब्रज तथा बुन्देलखंडी, ये दो भाषाएँ बहुत ही मधुर हैं। इन भाषाओं में वर्णों के कोमलीकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। बुन्देलखंडी में इसी प्रवृत्ति के अनुसार 'नरम' को

'लरम', 'नर्मदा' को 'नरबदा', 'कीर्ति' को 'कीरत', 'व्यथा' को 'विथा', 'पीड़ा' को 'पीरा', 'कीड़ा' को 'कीरा', 'बाबा' को 'बाबुल', 'आजा' को 'आजुल', 'भाई' को 'बीरन' कहा जाता है। बुन्देली में शब्द के बीच तथा अन्त में आनेवाला 'ह' वर्ण प्राय: लुप्त हो जाता है। यथा 'कहना' को 'काना', 'कहता' को 'कात', 'रहना' को 'रात', 'पहरा' को 'पारा', 'नाहर' को 'नार', 'काहू' को 'काऊ', 'दही' को 'दई', 'मही' को 'मई', 'रहे' को 'रये' आदि। इसी प्रकार 'ड़' की जगह 'र' और 'य' की जगह 'ज' बोला जाता है। जैसे 'पहाड़' को 'पहार', 'पड़ोस' को 'परोस', 'लड़का' को 'लरका', 'यमुना' को 'जमना', 'यशोदा' को 'जसोदा', 'यश' को 'जस', 'योग' को 'जोग' आदि। इन वर्ग-परिवर्तनों द्वारा उच्चारण की सुगमता तथा भाषा की सुकुमारता का भलीभाँति निर्वाह किया गया है।

बुन्देलखंड के त्योहार

सभी त्योहार जन-जीवन को प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान करते हैं। सभी जगह के समान यहाँ श्रावण, दशहरा, दिवाली और होली बहुत उत्साह के साथ मनाई जाती हैं। इन त्योहारों के सिवा बुन्देलखंड में कुछ ऐसे त्योहार भी होते हैं, जो भारत के अन्य प्रदेशों में नहीं होते। प्राय: अधिकांश त्योहार धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। उनका वर्णन नीचे किया जाता है:—

(१) *भुँजरियाँ*—श्रावण शुक्ल नवमी को पत्तों के बड़े-बड़े दोनों में गेहूँ बोये जाते हैं। इन्हें झाल के नीचे ढँक कर रख देते हैं। आठ दिन में पौधे करीब एक फुट बढ़ जाते हैं और ढँके रहने से पीले रंग के हो जाते हैं। भाद्रपद कृष्ण १ को ये नदी पर खोंटे जाते हैं। इन पौधों को परस्पर एक-दूसरे को देकर स्त्री-पुरुष आपस में प्रेम-भाव बनाये रखने की याचना करते हैं।

(२) *भूला*—श्रावण में झूला डालकर स्त्री-पुरुष झूलते हैं और साहुन के गीत गाते हैं। कुछ लोग बाँस के समान ऊँची गेंड़ी बनवा कर उन पर चढ़कर चलते हैं। स्त्रियाँ हाथ-पाँव में मेंहदी रचाती हैं। लड़के भौंरा, चकरी, बाँसुरी और लड़कियाँ चपेटा खेलती हैं।

(३) *महालक्ष्मी*—कुँवार बदी ८ को स्त्रियाँ मिट्टी का हाथी बनवा कर हाथी व महालक्ष्मी की पूजा करती हैं। खूब पकवान बनाये जाते हैं।

(४) *जबारे*—कुँवार तथा चैत्र की नवदुर्गा में जबारे बोये जाते हैं और नौ दिन तक देवी-पूजन तथा भगतें-गाने की धूम रहती है।

(५) *तीजा*—भादों सुदी तीज को स्त्रियाँ दिन-रात का निर्जला व्रत करती हैं। रात भर जागरण रखकर महादेव-पार्वती का पूजन करती हैं।

(६) *इच्छा-नोमी*—कार्तिक सुदी नवमी को स्त्रियाँ आँवले के वृक्ष की पूजा करती हैं और उसके नीचे बैठकर भोजन करतीं तथा ब्राह्मणों और दूसरे व्यवहारी लोगों को खिलाती हैं।

(७) *झंडा रोपना*—होली के अवसर पर कहीं-कहीं लोग एक चिकनी और बहुत ऊँची लकड़ी जमीन में गाड़कर उसके सिरे पर गुड़ का एक पारा तथा सवा रुपया बांध देते हैं। इस झंडे के तले कई दिन तक नृत्य, गान तथा स्वांग होते रहते हैं। अन्तिम दिन झंडा तोड़ा जाता है। झंडे की रक्षा के लिए स्त्रियाँ लम्बे-लम्बे बाँस लेकर उसे चारों ओर घेरकर खड़ी हो जाती हैं। लोग खम्भे पर चढ़ने की कोशिश करते हैं। स्त्रियाँ बाँस मार-मार कर उन्हें हटाती हैं। खम्भा तेल पोतकर चिकना बना दिया जाता है, जिससे जल्दी चढ़ा नहीं जा सकता। जो पुरुष झंडे पर चढ़कर गुड़ की गाँठ छोड़ लाता है उसे विजयी करार देकर सवा रुपया दिया जाता है। गुड़ सब को बाँट दिया जाता है। यदि झंडा कोई न तोड़ पावे, तो गुड़ तथा उसमें बँधा सवा रुपया स्त्रियों को मिलता है।

बुन्देलखंड के ग्रामीण देवता

बुन्देलखंड में अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इनमें से कई हिन्दूधर्म के और कई अनार्य जातियों के होते हैं। वीरत्व अथवा अन्य कोई विशेषता के कारण भी कुछ लोग देवकोटि में पूजे जाने लगे हैं। कुछ देवता कुछ खास जातियों के ही होते हैं और कुछ सार्वजनिक। नीचे कुछ प्रसिद्ध देवी-देवताओं का परिचय दिया जाता है:—

(१) *हनुमान जी*—महावीर हनुमानजी की मढ़िया प्रायः प्रत्येक गाँव में होती है। मंगल और शनिवार को इन की पूजा सिंदूर चढ़ाकर की जाती है।

(२) *महादेव*—महादेवजी के मंदिर, मढ़िया, चबूतरे या किसी पीपल के नीचे रखी मूर्ति की पूजा हर गाँव में की जाती है।

(३) *खेर माता*—हर गाँव में खेर माता की मढ़िया अवश्य होती है। सब जाति के लोग उसे पूजते हैं। माता की बीमारी, हैजा आदि के समय विशेष आराधना की जाती है।

(४) *हरदौल*—लाला हरदौल का चबूतरा प्रत्येक गाँव में रहता हैं। उनकी मूर्ति अश्वारूढ़ बनाई जाती है। जहाँ मूर्ति नहीं होती, वहाँ उनके नाम का अनगढ़ पत्थर रख दिया जाता है। यह चबूतरा गाँव के बाहर होता है। ब्याह के समय सभी जातियों की स्त्रियाँ उनकी पूजा करतीं तथा ब्याह का निमंत्रण दिया करती हैं।

(५) *दूल्हा देव*—इनका चबूतरा या मढ़िया भी गाँव के बाहर रहती है। कहते हैं, ब्याह के समय कोई दूल्हा मर गया था। बरात जाने के पहले उनको मौर पनैयाँ तथा पटा चढ़ाया जाता है।

(६) *मिड़ोहिया* — यह खेती-पाती से संबंध रखने वाला देव माना जाता है। खेत बोने और काटने के पहले किसान लोग इसकी पूजा करते हैं। इसकी मूर्ति नहीं होती। हर खेत की मेड़ पर उसकी स्थिति मानी जाती है और खेत की मेड़ पर ही उस की पूजा की जाती है।

(७) *घटोइया*—यह नदी-नालों का देवता है। चबूतरे पर एक गोल पत्थर रखा रहता है। ससुराल से आने-जाने वाली बहुएँ जब उनकी सीमा से निकलती हैं, तो उसे नरियल चढ़ाती हैं।

(८) *नागदेव*—साहुन सुदी पंचमी को नागदेव की पूजा बामी पर की जाती है।

(९) *ठाँटिया बाबा*—ढोरों के देवता हैं। अहीर लोग पूजते हैं। जब किसी के घर गाय-भैंस ब्याती है, तो वे भी ठाँटिया को नरियल चढ़ाते हैं।

(१०) *बरमदेव*—ये जाति के ब्राह्मण माने जाते हैं। विशेषतया ब्राह्मण लोग मांगलिक अवसरों के समय इनकी करवा जनेऊ चढ़ाकर पूजा करते हैं।

इनके सिवा नट बाबा, रकसा, गुरैया बाबा, मरई देवी, गोंड बाबा आदि निम्न जातियों के अनेक देवता होते हैं।

संचत गीत

स्त्रियों में मातृत्व की भावना अपना एक विशेष महत्व रखती है। केवल मानवी संसार ही नहीं, जीव और वनस्पति-जगत् में भी उसका अस्तित्व दिखाई देता है। जगत् की रक्षा के लिये यह प्रवृत्ति आवश्यक भी है। मातृत्व की भावना स्त्री-जीवन की सार्थकता का परम लक्ष्य है। इसीलिए हमारे यहाँ नारी का मातृरूप ही सब से भव्य, पवित्र ग्रौर कल्याणकारी माना गया है।

मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी लालसा संतति प्राप्त करना है। मनुष्य को कितना ही धन, वैभव, अधिकार, सम्मान ग्रौर सब प्रकार के सुख उपलब्ध क्यों न हों, परन्तु वह एक सन्तान के अभाव में अपने को संसार में नगण्य और दीन-दुखी ही अनुभव करता है। संतान-कामना यद्यपि पति-पत्नी दोनों में समान रूप से रहती है, परन्तु पुरुष का हृदय-संघटन कुछ इस प्रकार का होता है कि वह स्त्रियों की अपेक्षा कम संवेदनशील होता है, इसीलिये वह संतान के अभाव को कुछ हद तक सहन कर लेता है, पर नारी अधीर हो उठती है। वह संतान के बिना अपना जीवन ही निरर्थक समझती है।

बुन्देलखंड के संचत गीतों में नारी-हृदय की यही विकलता उद्दाम वेग से प्रस्फुटित होकर शत-सहस्र स्रोतों से बहती दृष्टिगोचर होती है। उनमें उसकी संतति-प्राप्ति की आकांक्षा, ग्रधीरता, करुण-वेदना तथा

पुत्र-प्राप्ति के उपचारों का सरस चित्रण रहता है। संचत शब्द संतति, का अपभ्रंश है।

हिन्दू जाति में संस्कारों का विशेष महत्व है। किसी वस्तु के दोषों को दूर करके उसे विभूषित करना ही संस्कार कहलाता है। जिस प्रकार खान से निकलने पर रत्नों के ऊपर मिट्टी आदि अनेक बाह्य-मलों की पर्तें चढ़ी रहती हैं, जिससे उसकी चमक अदृश्य रहती हैं। परन्तु, जब वे सान पर रखकर खरादे जाते हैं, तो उनकी चमक निखर आती है। इसी तरह मानव-शिशु में भी रक्त, वीर्य और गर्भ सम्बन्धी अनेक दोष रहते हैं। संस्कारों द्वारा उक्त दोषजन्य मलिनता नष्ट की जाती है। संस्कारों के वैज्ञानिक तत्व आजकल अविदित हो गये हैं, इस कारण उनका चलन दिन-प्रतिदिन घटता जाता है। परन्तु, उनका थोड़ा-बहुत स्वरूप जो अनेक जातियों में अब भी अवशेष है, वह उनके लौकिक रीति-रिवाजों तथा लोकगीतों से जाना जाता है। बुन्देलखंड में गर्भ के छठवें या आठवें महीने में एक दस्तूर किया जाता है, जिसे यहाँ 'आगन्नो' या 'फूलचौक' कहते हैं। यह दस्तूर वैदिक पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार का स्वरूप मालूम होता है। इस संस्कार में गर्भवती स्त्री के मायके से लाल रंग के वस्त्र आते हैं। आगन्ने के दिन स्त्री उन वस्त्रों को पहिन कर चौक पर बैठती है। बुलौवा होता है और प्रचलित दस्तूर, पूजन आदि कराया जाता है। संचत गीत विशेषतः इसी अवसर पर गाये जाते हैं। वैसे तो वे जन्म समय के भौं लोटनी, कौंकें, दसटौन आदि के समय भी गाये जाते हैं। इस संग्रह में सभी संस्कारों के, जो यहाँ प्रचलित है, लोकगीतों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना है। अतः जन्म के पूर्व गर्भावस्था के समय गाये जाने वाले संचत गीतों से ही प्रारंभ किया जाता है।

(१)

राजा तौ पौंढ़े पलंग पै रानी मलें पीड़ोलीं महाराज।
हँस-हँस पूँछें राजा दशरथ कैसी धन[1] अनमनी महाराज।
भौतक तो कहिये राजा अन्न धन भौतक लक्ष्मी महाराज।
सूनो अयोध्या को राज अकेली संचत[2] बिना महाराज।
तुम राजा जैयो बजारे संचत मोल ल्याइयो महाराज।
तुम रानी मूरख अजान कहाँलौं समझाइये महाराज।
हाटों[3] में हतिया बकायँ संचत नहीं पाइये महाराज।
नगर को नौआ बुलैयो छुरा मंगवाइयो महाराज।
चीरो अभागिन की कूँख राजा गवाँरिन कहैं महाराज।
काशी के पंडित बुलैयो वेद बचवाइयो महाराज।
पहलो पना[4] जब खोलो बांच सुनवाइयो महाराज।
नगर न बाजें बधैयां सखी न गावें सोहरो महाराज।
दूजो पना जब खोलो बांच सुनवाइयो महाराज।
अहिरा को[5] लोबे[6] न गाय मथन[7] नहिं घूमियो महाराज।
तीजो पना जब खोलो बांच सुनवाइयो महाराज।
राजा हैं जनम के मोगिया[8] ग्यावन[9] हिरनी मारियो महाराज।

राजा दशरथ पलंग पर लेटे हैं। रानी कौशल्या पैर मल रही हैं। रानी को उदास देखकर राजा ने पूछा—"प्रिये, आज तुम उदास क्यों

१ धन = पत्नी, स्त्री। २ संचत = बाल-बच्चे। ३ हाटों = हाट, बाजार का बहुवचन। ४ पना = पृष्ठ, पन्ना। ५ अहिरा को = अहीर, दुहनेवाला। ६ लोबे = गाय दुहते समय गाय के दोनों पीछे के पैर रस्सी से बाँध देते हैं उसे लोबे कहते हैं। ७ मथन = मथानी। ८ मोगिया = बहेलिया। ९ ग्यावन = गाभिन।

दिखती हो? रानी उत्तर देती है —"प्रियतम, अपने घर में धन-धान्य अटूट है, वैभव इन्द्र से भी बढ़कर है। किसी सुख की कमी नहीं, परन्तु, एक संतान के बिना मुझे अयोध्या का राज्य सूना-सूना-सा लगता है। मुझे एक संतान बाजार से खरीद दो।" रानी की इस मर्मभेदी बात को सुनकर राजा कहते हैं—"रानी, तुम बड़ी अज्ञान मालूम पड़ती हो। बाजार में हाथी-घोड़े, मोती-जवाहर बिकते हैं। संतान नहीं बिका करती। संतान तो प्रारब्ध से ही प्राप्त होती है।" रानी कौशल्या पति की बात सुनकर दुःखित होती हैं। मन में विचार करने लगती हैं कि पुत्र ही न होने के कारण मुझे ये बातें सुनना पड़ती हैं। वे दुःख की हिलोर को न सँभाल सकीं और राजा से कहने लगीं—"प्रियतम, नाई को बुलाकर इस अभागिन की कोंख को चिरवा डालिये। जिस कोख से पुत्र-रत्न पैदा न हो वह किस काम की।" राजा रानी की वेदना समझ गये। उन्होंने काशी से पंडित बुलवाकर भविष्य पूछा। पंडित कहने लगा—"राजन्, तुम्हारे महल में न तो बाजे बजेंगे, न स्त्रियाँ सोहर गावेंगी। यहाँ तक कि गाय भी गाभिन न होगी। न दूध होगा, न मथानी घूमेगी। आप पूर्व जन्म के बहेलिया हैं। आपने गाभिन हिरणी मारी थी। उसी पाप का यह परिणाम है।"

सोने की हिरनी गढ़वाव रूपे के गबेलुवा[1] महाराज।
बन-बन देव छुड़ाय संचत तब हुइये महाराज।
तुम राजा जैयो पहारे सजीवन ल्याइयो महाराज।
घिस लुड़िया[2] बँटबइयो कटोरन छानियो महाराज।
पियो है बाँट-बड़ार[3] तीनई रानी अधान से महाराज।

---

१ गबेलुवा = गर्भस्थ बालक। २ लुड़िया = पत्थर। ३ बाँट-बड़ार = विभाजित करके।

भये हैं नौ-दस मास ललन चार हो गये महाराज।
बाजन लगीं आनन्द-बधैयाँ सखी गावें सोहरे महाराज।
गौवा के गोबर मँगैयो अँगन लिपवाइयो महाराज।
गजमोतिन के चौक पुरा कलस धरवाइयो महाराज।
काशी के पंडित बुलाय वेद पढ़वाइयो महाराज।
बारा बरस के हुइयें राम तब बन खों जैहें महाराज।
इतनी तो सुन राजा दशरथ अटरियों चढ़ गए महाराज।
पाछूँ सें गईं कोशिल्या पूछें कैसे राजा अनमने महाराज।
बारा बरस के हुइयें राम बन खों जैहें महाराज।
बन खों जैहें तो जान दे फेर घर आहें महाराज।
मोरो मिटगव बाँझ को नाव तुम्हारो वंश चलो महाराज।

(गायिका हीराबाई, बेवरी)

प्रसंग आगे चलता है। पंडित ने पुत्र-प्राप्ति का उपाय बतलाया। राजा ने सोने की हिरणी तथा चाँदी के गबेलुआ बनवाकर वन-वन में छुड़वा दिये। जंगल से संजीवनी-बूटी मँगाकर तीनों रानियों को पिला दी। रानी गर्भवती हुईं और दसवें मास पुत्र उत्पन्न हुए। अब क्या था? आनन्द के बाजे बजने लगे, स्त्रियाँ सोहर गाने लगीं। काशी से पंडित ने आकर भविष्य बतलाया—"जब राम बारह वर्ष के होंगे, वन को जावेंगे।" यह अप्रिय बात सुनते ही राजा दुःखित होकर अटारी पर चढ़ गये। पीछे से रानी कौशल्या ने जाकर उन्हें सांत्वना दी। कहा—"राम वन को जायेंगे तो जाने दो, फिर लौटकर आ जावेंगे। पुत्र होने से मेरा बाँझ नाम मिट गया और आप का सुन्दर वंश चला।" बाँझ संज्ञा स्त्रियों के लिए कितनी वेदनाकारक होती है, यह बात उक्त गीत से भलीभाँति हृदयंगम की जा सकती है।

(२)

लीपत तीं धन[1] ओबरी[2] पोतत पौर दुआर।
हँसत-खेलत राजा आ गए बात कहैं धन एक।
सुनियो मन चित लाय ब्याव रचें हम दूसरो।
के हम कुल की टाँचरी[3], के हम सेवा नै जोग।
ब्याव रचो पियो दूसरो।

कुल कीं तो तुम दो तिल आगरी[4] भौतक[5] सेवा जोग।
कूँखरियाँ[6] बैरन भईं जेने घटाये तोरे मान।
ब्याव करें हम दूसरो।

पत्नी शयन-गृह लीप रही थी, पौर के द्वार को पोत रही थी, इसी समय हँसते-खेलते उसके प्रियतम आ गये। कहने लगे—"प्रिये, एक बात कहता हूँ, ध्यान से सुनो। मैं अपना दूसरा विवाह कर रहा हूँ।" पति के वचन सुन उसके मन में बिजली-सी कौंध गई। उसने धैर्य रख कर पूछा—"प्रियतम, दूसरा विवाह करने का क्या कारण है? क्या मैं कुल की खोटी हूँ या आपकी सेवा करने में असमर्थ हूँ?" पति स्पष्टवादी बनकर उत्तर देता है—"प्रिये, यह बात नहीं है। तुम कुल की श्रेष्ठ—दो तिल अधिक हो, सेवा करने में भी तुम चतुर हो, पर तुम्हारी कोख ही तुम्हारी बैरिन बन गई है। उसीने तेरा मान घटाया है और उसी कारण मुझे दूसरा विवाह करना पड़ रहा है।"

---

१ धन = पत्नी। २ ओबरी = भीतरी घर, पति-पत्नी का शयन-कक्ष। ३ टाँचरी = खोटी। ४ आगरी = अधिक, बढ़ी-चढ़ी। ५ भौतक = बहुत हा। ६ कूँखरियाँ = कँख, कुक्षि।

इतनी तो सुन धन अनमनी[1] हन लये[2] बजर किबार।
आई ननदबाई पाहुनी खोलो भौजी बजर किबार।
साँकर खोलो लोहे की।

भौजी भौतक हुइयें नंदलाल अपन दोई जेइये[3]।
सोने के थार परोसियो भौजी रूपे कटोरन दूध।
अपन दोई जेइये।

जेय जूँठ[4] वैया ओबरों पैंची भौतक देत असीस।
फरियो भौजी करई नीम सी, छिछलो बूढ़ी दूब।
अचल त रे हुइये ऐबात[5]।

पति का विचार सुनकर पत्नी उदास हो गई। उसके हृदय पर वज्राघात हुआ। जिसका निकट भविष्य में सुहाग-सुख छिनने जा रहा हो उसके दु:ख का क्या पारावार? दु:ख हृदय में न समाया। वह उठी और एक घर में किवाड़ बंद करके बैठ गई। वह एकांत में बैठकर अपने अंधकारपूर्ण भावी जीवन की कल्पना करने लगी। इसी समय सौभाग्य से उसकी ननद आ पहुँची। उसने किवाड़ खुलवाये। भावज के दुख का कारण जानकर उसे सान्त्वना दी। कहने लगी—"भौजी, तुम चिन्ता क्यों करती हो? तुम्हारी गोद भरेगी और तुम्हारे एक-दो नहीं, अनेक नन्दलाल होंगे। इस समय तो मुझे भूख लगी है। चलो हम-तुम दोनों भोजन करें।" भोजन करके ननद ने आशीर्वाद दिया—"भौजी, तुम नीम के सदृश फूलो-फलो और दूब के समान वंश का विस्तार करो। तुम्हारा सौभाग्य अचल हो।"

---

१ अनमनी = अन्यमनस्क, उदास। २ हन लये = लगा लिये। ३ जेइये = भोजन करें। ४ जेय जूंठ = खा-पीकर। ५ ऐबात = अहिवात, सौभाग्य।

मन जो कहै धिया[1] जनमियो मोरे गजबज आहे बरात।
लटकत आबें मोरे साजना, विहंसत दुल्हा दमाद।
घर मोरो रीतो अँगन मोरो रीतो सब सुख रीतो पेट।
साजन धिया लैकें निग गए[2]।

मन जो कहे पुत्र जनमियो मोरे गजबज जैहे बरात।
घर मोरो भरगव, अँगन मोरे भरगव, सब सुख भरगव पेट।
बेटा बहू लैकें आइयो।

धन्न मोरी कूंख सुलोचनी जिन मोरे राखे हैं मान।
पिया ब्याव रचतते दूसरो।

(गायिका—गौराबाई मिसरान, देवरी)

ननद का आशीर्वाद सफल हो गया। भौजाई आधान से हो गई। आशा-लता लहलहाकर दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। वह कल्पना करती है कि मेरी कूंख से पुत्री उत्पन्न हुई है। वह चन्द्रकला के समान दिन-पर-दिन बढ़ रही है। फिर वह कल्पना करती है, मेरे घर पर उमड़-घुमड़ कर, घूमधाम के साथ बरात आई हुई है। समधी मस्तानी चाल से झूमता हुआ चला आ रहा है। दामाद हँसता-खेलता आ रहा है। वह आनन्द-विभोर हो गई। विचार-प्रवाह आगे बढ़ा। उसकी सारी खुशी तिरोहित हो गई। समधी हृदय-धन प्यारी पुत्री को लेकर चला गया। उसका घर, आंगन और हृदय सभी सूना हो गया! सारा सुख-उल्लास पुत्री के साथ चला गया। उस की विचार धारा बदली। वह सोचने

---

१ धिया = पुत्री। २ निग गए = चले गये।

लगी, नहीं नहीं, मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। मेरे घर से सज बज कर बरात जा रही है। वह देखो, बेटा बहू लेकर आ रहा है। बहू मृदुमंद गति से नूपुरों की झनकार करती हुई द्वार पर आ गई है। बहू के आने से मेरा घर आँगन और हृदय आनन्द से भर गया है। आज वह अपनी कोख की प्रशंसा करती है। कहती है—"मेरी कोख को धन्य है जिसने पुत्र रत्न पैदा किया और मेरा मान रखा, अन्यथा प्रीतम तो दूसरा विवाह कर ही रहे थे।"

सोहर गीत

सोहर गीत जन्म समय तथा उसके अनेक उत्सवों—भौं लटनी, काँके, दसटौन, मुन्डन, अन्न प्राशन आदि के समय गाये जाते हैं। नारी कंठ का माधुर्य और गीत वर्णित कथावस्तु के विविध भावों का प्रवाह उपस्थित जन समुदाय के हृदय-पटल को सुधारस से सराबोर कर देता है। प्रसिद्ध शब्दशास्त्री श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल के लेखानुसार सोहर शब्द संस्कृत 'सूतिगृह' और प्राकृत 'सुइहर' से बना है। जन्म समय का आनन्द इन गीतों की मुख्य प्रेरणा है। संसार में पुत्र जन्म से बढ़कर दूसरा कोई आनन्द नहीं माना जाता। "दशरथ पुत्र-जन्म सुन काना, मानहु ब्रह्मानन्द समाना।" शास्त्रवेत्ताओं ने ब्रह्मानन्द को ही सच्चा और सर्वोपरि आनन्द माना है और रामायण में गोस्वामी तुलसीदासजी ने पुत्र-जन्म के आनन्द की तुलना ब्रह्मानन्द के साथ की है। सचमुच पुत्र-जन्म का आनन्द संसार में अतुलनीय है। सोहर गीतों में इसी आनन्द की झलक सर्वत्र पाई जाती है। साथ-साथ उनमें हास-परिहास तथा सास, ननद, आदि के झगड़ों और समाज में प्रचलित गृह-कलह की झाँकी भी यथेष्ट रहती है। नीचे हम दो-चार सोहर-गीत प्रस्तुत करते हैं।

१

मोरे उठत कमर घन पीर अब नैयाँ जीने की।
सुन राजा रे, महाराजा रे, मोरी सासू कों देव बुलाय।
अब नैयाँ जीने की।

सुन माता री, तोरी बहू बेहाल तुम्हें बुलाउत है।
सुन बेटा रे, रानी बहुआ के बोल-कुबोल करेजे में हन गए।
सुन माता री, अपने बेटा के खातर बोल बिसर जा री।
सुन रानी री, महारानी री तूने बोले हैं बोल-कुबोल।
तो वे नैयाँ आने की।
सुन राजा रे, महाराजा रे, मोरी जिठनियां खों देव बुलाय।
तो अब नैयाँ जीने की।
सुन भौजी री, तोरी देवरानी बेहाल तुम्हें बुलाउत है।
सुन लाला रे, देवरनियाँ के बोल करेजे में हन गए।
सुन रानी री, बोले हैं बोल-कुबोल वे नैयाँ आने की।

प्रसव का समय समीप आ गया है। गर्भिणी के पेट तथा कमर में दर्द हो रहा है। वह घबड़ा जाती है। पीड़ा की प्रबलता से उसे अब जीवित रहने में सन्देह होने लगा है। वह पति से कहती है—"मेरी सास को शीघ्र बुला दो नहीं तो मैं मर जाऊँगी।" पति माँ के पास जाकर कहता है—"माँ, तुम्हारी बहू बहुत व्याकुल हो रही है, तुम्हें बुलाती है।" माँ जवाब देती है—'बेटा तेरी बहू ने मुझसे जो दुर्वचन कहे हैं वे मेरे हृदय को विदीर्ण कर रहे हैं, मैं नहीं जाऊँगी।" बेटा पुनः प्रार्थना करता है—"माँ, मेरे खातिर उन बातों को भूल जाओ और इस संकट के समय शीघ्र चलकर अपनी बहू को संभालो।" परन्तु माता के हृदय पर बहू के उन दुर्वचनों का इतना कुहासा छाया हुआ है कि वह उसे भेदकर जाने में अपने को असमर्थ पाती है। बेटा घर आकर अपनी प्राणप्रिया से कह देता है—"तुमने उनसे दुर्वचन कहे हैं, इस कारण वे नहीं आती।" गर्भिणी प्रसव-पीड़ा से छटपटा रही है। उसे इस समय परिचर्या के लिए एक आत्मीय स्त्री-सहायिका की नितान्त आवश्यकता है। अतः

सासजी नहीं आतीं तो वह जिठानी को बुला देने को कहती है। जिठानी भी वही कारण बतला कर आने से इनकार करती है। इसी प्रकार देवरानी, ननद आदि आत्मीय स्त्रियों का नाम ले-लेकर गीत आगे बढ़ता चला जाता है।

भोर भये भुनसारे ललन प्यारे हो गए।
सुनो राजा रे, महाराजा रे, ल्याओ सोंठ-बिस्वार।
लड़ुवा बंधाओ, तुम बाँधो हम खाँय।
ललन प्यारे हो गए।

(गायिका—खेमाबाई दुबन, बिचुवा)

सारी रात प्रसव-पीड़ा का दुःख सहने के उपरांत प्रातःकाल पुत्र पैदा हो गया। गर्भिणी का संकट टल गया। जब कष्ट के समय बुलाने पर भी सास, ननद नहीं आईं तब उसने अब उनको बुलाने की जरूरत नहीं समझी। वह अपने पति से कहती है—"प्रियतम, बाजार जाकर सोंठ विस्वार खरीद लाओ। (पुराना गुड़ तो लोग पहले से ही खरीद कर रख लेते हैं) और लड़ुवा बांधो। तुम लड़ुवा बाँधना, मैं आनन्द से खाऊंगी।"

२

कौना के अंगना जिमरिया लहर-लहर होवे,
महर-महर आवे बास तो नींद नईं आइयो।
कौना की नार गरभ सें मधुरियन पग धरै रे,
ललन-ललन कहै, होरल-होरल[1] कहै।

---

१ होरल = अत्यधिक प्यारा पुत्र।

ससुरा के अंगना जिमरिया लहर-लहर होय,
महर-महर आवे बास नींद नईं आइयो।
जेठा की नार गरभ सें मधुरियन पग धरै,
भोर भये भुनसारे भौजी मोरी अनमनी।

ननदी छम-छम उतरी अटरियों पूछन लगीं,
भौजी तुमरी काहो पिराय काहो दूखत है।

बैया बीरन खों देव बुलाय पेट मोरो दूखत है,
मोरे राजा कचेरी से आयें तुम्हारो का दूखे री।

सिर मोरो दूखे, कमर मोरी टूटे,—
राजा आई करेजें पीर,
सुगर दाई चाहत हों।

किस के आंगन में जिमरिया लहरा रही है जिसकी तीव्र गंध से निद्रा नहीं आई। किसकी स्त्री गर्भवती है जो मृदु-मधुर पद से चलती है और ललन-ललन, होरल-होरल रटती है?

ससुर के आंगन में जिमरिया लहरा रही है, जिसकी महक से नींद नहीं आई। जेठ की स्त्री गर्भवती है जो गर्भ के भार से धीरे-धीरे माधुरी चाल से चलती है।

सबेरा होते ही ननद अटारी से छम्-छम् करती उतरी। देखा, भौजी का मुख उदास है। उसने पूछा—"भौजी, क्या कोई दर्द है? चेहरा उतरा हुआ क्यों है?" भौजी बोली—"तुम अपने भाई को बुला दो। मेरा पेट दर्द कर रहा है।" कचहरी से भाई आया और पूछने लगा—"प्रिये, क्या बात है?" पत्नी उत्तर देती है—"मेरा सिर दुखता

हूँ, कमर टूटती है और कलेजे में तीव्र पीड़ा हो रही है। मुझे चतुर दाई की आवश्यकता है, उसे शीघ्र बुला दो।"

ऊँचो पटनपुर गाँव जहाँ दाई रहे रे।
राजा घुड़ला पैं भये असवार दाई घर निंग चले।
कौने टटा[1] मोरो खोलो कूकर मोरे भोंको रे।
लाला कौना राजन के पुत्र इतनी रात आये हो?
कै तुमरी माई चाहे दाई बहिन चाहे दाई।
कै घर नार पिरयानी[2] सुगर दाई चाहें रे?
नै मोरी माई चाहे दाई, बहिन चाहे दाई।
हम घर नार रिरयानी सुगर दाई चाहे रे।
दाई तो बैठी घिनौची[3] घिसन मजन करें।
तोरी धन[4] हाथ की गाढ़ी मुंह की पातरी रे।
लाला ठीक ठेराव करें जाब सुगर दाई तब चल है।
जो कऊँ हू है नँदलाला मोतनहार हम लै हैं।
जोरा लड़ैती सी धियारी तों सब रंग चूनरी।

ऊँचे पटनपुर गाँव में दाई रहती है। पति घोड़े पर सवार होकर दाई को बुलाने चला। उसके घर जाकर किवाड़ खोले। किवाड़ खुलने की आवाज सुनकर कुत्ता भौंकने लगा। दाई बोली—"किसने किवाड़ खोला?" इतने में वह उसके सामने पहुँच गया। दाई कहने लगी—

---

१ टटा = किसी पेड़ या बाँस की टहनियों से बना फाटक।
२ पिरयानी = प्रसव-पीड़ा होना।
३ घिनौची = पानी भरकर रखने की जगह।
४ धन = स्त्री, पत्नी।

"लाला, तुम किसके पुत्र हो जो इतनी रात बीते आये हो? तुम्हें किसके लिए दाई की जरूरत है? माँ-बहन के लिए या अपनी घरवाली के लिए?" वह बोला—"मेरी स्त्री का पेट दर्द कर रहा है, उसके लिए तुम्हारी जरूरत है। शीघ्र चलो।" दाई घिनौची में बैठी बर्तन मल रही थी, बोली—"मैं तुम्हारी स्त्री के स्वभाव से परिचित हूँ—वह हाथ की गाढ़ी (कंजूस) और मुंह की ओछी है। अतः पजाई का ठहराव पहले करदो, तब चलूंगी। यदि पुत्र होगा तो मोतियों की माला लूंगी और पुत्री हुई तो सब रंग चूनरी।"

भर भादों की रात झिमक जल बरसे भींजत मोरें को जै है?
तुम दाई ओढ़ो दुशाला रिमझिम बरसत मेह—
भीजत दाई हम जै हैं।
लाला गलियों मची है कीच खबत मोरें को जै हैं?
दाई घुड़ला पै होजा सवार खबत दाई हम चल हैं।
दाई रिमकत झिमकत आईं अँगनवाँ में उतरी रे।

रानी घरियक पीर समारो ललन तोरे हुइयें री।
तुम रानी पौंढ़ो पलंग पै मलों तोरी पीड़ोंली।
दाई ने फेरो है हाथ ललन प्यारे हो गये।
बजन लागीं आनन्द बधैयाँ सखी गावें सोहरें।
सात सबद सैनैयाँ ससुर घर बाज रहीं।
दाई लै लै अधेली कोदों छिड़ियों में से भगजारी।
जो कऊँ आ गये रंगीले देउर—
रखाहें तोरे पेट जुगत सें भगजारी।

(गायिका—हीराबाई, देवरी)

दाई को ले जाना तो आवश्यक था, उसकी शर्तें स्वीकार करली गयीं। भाद्रपद मास की अंधेरी रात थी। रिमझिम-रिमझिम मेह बरस रहा था। दाई बोली—"ऐसी वर्षा में मैं भीगती हुई कैसे चलूं?" उत्तर मिला—"दुशाला तुम ओढ़ लो, मैं भीगता चला चलूंगा।" दाई ने एक और नई उजर पेश की—"रास्ते में कीचड़ है। कीचड़ में खबती हुई कैसे जा सकूंगी।" अटक बावरी होती है। उसने कहा—"दाई घोड़े पर तुम बैठ जाओ। मैं कीचड़ में खबता हुआ चला चलूंगा।" आखिर दाई दुशाला ओढ़े, घोड़े पर सवार होकर चली और जच्चा के घर पहुँची। जच्चा को देखकर कहने लगी—"बहूरानी, घड़ी-दो-घड़ी की पीर सह लो। शीघ्र ही तुम्हारे नन्दलाल उत्पन्न होंगे।" ऐसा कह उसने जच्चा को पलंग पर लिटाकर उसकी पिंडली मलना आरम्भ किया। थोड़ी ही देर के उपरान्त पुत्र उत्पन्न हो गया। अब क्या था? शहनाई आदि बाजे बजने लगे, आनन्द-उत्सव मनाया जाने लगा। स्त्रियाँ बधाई नाचने लगीं। दाई ने अपनी पजाई मांगी। बहूरानी भी बहुत चतुर थीं। अब उसका काम निकल चुका था। वह बोली—"दाई आधी पाई कोदों ले लो और चुपचाप अपने घर का रास्ता पकड़ो। देख, मेरा देवर बहुत रंगीली तबियत का है यदि वह आ गया तो तुम को अछूता न छोड़ेगा। तेरे पेट रह जायगा। इससे मेरा कहा मान और चुपचाप अपनी इज्जत लेकर इस कुलिया में से भाग जा।" बेचारी दाई क्या करती? जी लेकर भाग गई।

३

पिया जात हो देस विदेस खुनखुना लँय अइयो रे।
रानी नैं तोरें बारे, नै छोटे, खुनखुना कौन खिलाहो रे?
इतनी तो सुन धन अनमनी, ए धन अनमनी।
हन लये बजर किबार साँकर दै लई लोहे की।

भाँय से आ गए बारे देवरा वे हँस बोले, बे हँस बोले।
खोलो भौजी बजर किबार सांकर खोलो लोहे की,
भौजी कैसे बदन मलीन, कैसी भौजी अनमनी।
लाला तुमरे भैया बोले हैं बोल, करेजे में हन गए।

इस सोहर में एक स्त्री अपने पति से कहती है—"प्रियतम तुम हमेशा देश-विदेश जाया करते हो, कहीं से एक अच्छा-सा खुनखुना लेते आना।" पति आश्चर्य चकित होकर पूछता है—"प्रिये, तुम्हारे कोई बालक तो है नहीं, फिर खुनखुना किस के लिये मँगा रही हो?" इतना सुनते ही स्त्री का मुख मण्डल कुम्हला गया। उसे अपने सन्तान हीन होने का रंज समा गया। वह चुप चाप घर के भीतर किवाड़ बन्द करके बैठ गई। इतने में देवर जी आ पहुँचे। किवाड़ खुलवा कर पूछा—"भौजी, आज तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ कैसा है? अनमनी क्यों दिख रही हो?" भौजाई ने उत्तर दिया—"तुम्हारे भाई के वचन मेरे हृदय में चुभ गए हैं।"

नौ-दस महीना के बीच ललन नौने हो गए।
बजन लगीं आनन्द बधैयाँ सखी गावें सोहरे।
सात सबद सैनैयाँ ससुर घर बाज रही रे।
मोरे पछी तें सुनरवा तो बेगी बुलवाइयो रे।
मोय खुनखुना को शौक बेगी गढ़वाइयो रे।
बारा बरस में लौटे पिय प्यारे खुनखुना ले आये रे।
रानी लैले अपनो खुनखुना खुनखुनवाँ हम ल्याये रे।
खुनखुना देव अपनी माई खों बिरन तोरे खेलें रे।

राजा ने मोरे बारे नै ओली[1] झडूले[2]—
खुनखुना कौन खिलावे रे।
राजा मोय[3] खुनखुनवा को शौक,—
सोने को गढ़वालव रे।

(गायिका—दुर्गाबाई टेनगुरनी, जैतपुर देवरी)

सौभाग्य से इस घटना के पश्चात ही उसके गर्भ रह गया। नवमें मास पुत्र उत्पन्न हुआ। आनन्द-उत्सव मनाया जाने लगा। सप्त स्वर से शहनाई बजने लगी। स्त्रियाँ सोहर गाने लगी। जच्चा को तो पहले से ही खुन-खुना की लगन थी। अब परमात्मा ने उसकी इच्छा पूर्ण की थी। फिर वह खुन-खुना क्यों न बनवाए! उसने तुरन्त सुनार को बुला कर सोने का खुन-खुना बना लाने को कहा। उस का पति परदेश गया था। वह बारह वर्ष में घर लौटा तो अपनी प्रियतमा की माँगी हुई वस्तु खुन-खुना लेता आया। उसने घर आते ही स्त्री से कहा— प्रिये, देखो मैं तुम्हारी प्रिय वस्तु खुन-खुना ले आया हूँ। इसे ले लो।" स्त्री उस दिन की बात नहीं भूली थी। खुन-खुना का नाम सुनते ही उस की वह वेदना पुनः जागृत हो उठी। उसने जवाब दिया— "प्रियतम, यह खुन-खुना तुम अपनी माँ को दे दो। तुम्हारे भाई उसे खेलेंगे। मुझे क्यों देते हो? न मेरी गोदी में झडूला है न छोटा बालक मुझे तुम्हारा खुन-खुना नहीं चाहिये। मुझे खुन-खुना का शौक था सो मैंने सोने का बनवा लिया है।"

४

इस सोहर में एक चतुर स्त्री द्वारा एक पाखंडी साधु को छकाने का उत्तम वर्णन किया गया है। इस गीत से यह भी पता चलता है कि

१ओली = गोदी। २ झडूले = जिस बच्चे का मुंडन संस्कार न हुआ हो। ३ मोय = मुझे।

अनेक गेरुवा वस्त्रधारी - साधु जीवन भर अनेक पाखंड रच कर धन संग्रह कर के उस का कैसा दुरुपयोग करते हैं।

मोरे अँगना में नीमा जोगिरा घमौआ बिलमाले।
इतनी तो सुनके जोगिरा दिहर चढ़ बैठो, दिहर चढ़ बैठो।
सुन्दर, कहाँ गई तोरी सास कहाँ तोरी ननदी।
सुन्दर, कहाँ गये तोरे घर के घरैया, घर के घरैया।
जोगिरा, सासो तो गईं मोरी मायके, ननद मोरी सासरें।
घर के गए परदेश, घरैया मोरे घरे नैयाँ रे।
जोगिरा इतनी तो सुनकें पलंग चढ़ बैठो रे।
मन भर सोनों निकारो सुन्दर नौने पहिरो रे।
पहिर ओढ़ ठाड़ी भईं गोरी झरोखों से झाँकी रे।
जोगिरा, भगने होय भगजाव घरैया मोरे आ गये रे।
सुन्दर, न तोरें इरकी नै खिरकीं नैं बाउन झरोखारी।
कँहना सें भागों, जियरा मोरो बचाय लियो री।
जोगिरा एक हाथ ले लें टुकनियाँ मिहरिया को रूप धरो रे।
सुन्दर देसन देस फिर आये ठगन नहिं पायो री।
तोरी बारा बरस की उमरिया तैंने मोय ठग लव री।

(गायिका—गोमतीबाई काछन, बिचुवा)

एक स्त्री किसी साधु को अपने घर के सामने से जाते देख कहती है—"महात्माजी, इस जेठ की खरी दोपहरिया में कहाँ जा रहे हैं? मेरे आँगन में नीम की शीतल छाया है, दो घड़ी बैठकर विश्राम कर लें।" साधु तो कामिनी-कान्चन का दास था ही, ऐसा अवसर क्यों छोड़ता? वह लौटा और उसकी देहरी पर आ बैठा। उसने देखा

घर सूना है। उसे अपनी कार्य-सिद्धि का यह स्वर्ण अवसर जान पड़ा। वह बोला—"सुन्दरी, तुम्हारे घर के लोग कहाँ गए हैं?" रमणी उत्तर देती है—"मेरी सास मायके गई है और ननद ससुराल को। मेरा पति परदेश गया है। इस समय में घर में अकेली हूँ।" इतना सुनते ही वह पाखंडी साधु देहरी से उठा और उसके पास पलंग पर जा बैठा। उसने अपनी झोली से बहुत से स्वर्ण के आभूषण निकाले। उन्हें रमणी को देकर कहा—"इन्हें पहिनो।" स्त्री ने सब आभूषण पहिन लिये। पहिन-ओढ़ कर वह उठी और खिड़की में से बाहर को झाँकने लगी। कुछ क्षण बाद वह घबड़ाई हुई बोली—"योगीराज, तुमको अपनी जान बचाना हो तो शीघ्र भाग जाओ। मेरा पति आ रहा है।" साधु सिट्टी-पिट्टी भूल गया। घबड़ा कर कहने लगा—"कहाँ से भागूं? तुम्हारे घर में कोई दूसरा दरवाजा या खिड़की तो है ही नहीं सुन्दरी, मेरी जान बचा ले।" स्त्री ने युक्ति बतला दी—"स्त्री का रूप धारण करलो और टोकनी लेकर इसी सदर दरवाजे से चले जाओ।" साधु को विवश हो कर ऐसा ही करना पड़ा। जाते समय वह कहता गया—"सुन्दरी, मैं देश-विदेश सब जगह घूमा हूँ पर कहीं ठगाया नहीं गया। पर आज तुम जैसी बारह वर्ष की देहाती छोकरी ने मुझे मूर्ख बना कर ठग लिया।"

५

पहले पहर को सपनो सुनो मोरी सासोजी महाराज।
राम-लखन दोऊ भैया अँगन बिच तप करें महाराज।
बैया[1] लँय बेला भर तेल साँतिया[2] लिख रहीं महाराज।
भौजी बैठी माझ-मझोटे हार नोने गुह रहीं महाराज।

---

१ बैया = ननद का उपनाम। २ साँतिया = स्वस्तिक।

गाँव से आ गईं बारी बैया वे हँस बोलियो महाराज।
भौजी हुइयें तुमारें नंदलाल हार हम लै लेंहें महाराज।
चूमो बैया तोरी हतुलियाँ घिया गुर मुंह भरों महाराज।
जो बैया हुइयें नन्दलाल हार तुम लै लियो महाराज।

एक वधू अपनी सास को सपने का हाल सुना रही है। कहती है—"मैंने प्रथम प्रहर में देखा कि राम-लक्ष्मण दोनों भाई मेरे आँगन में बैठे तप कर रहे हैं। पास ही ननद बाई साँतिया लिख रही हैं। मैं मजघरा में बैठी हार गूंथ रही थी।" इसी बीच छोटी ननद बाई भी आ पहुँची। सपने का वृत्तान्त सुन कर वह हँसती हुई बोलीं—"भौजी सपना शुभ है शीघ्र ही तुम्हारे नँदलाल होंगे। तुम्हारी गोद भरेगी। यदि तुम्हारे नँदलाल होंगे तो मैं तुम्हारा यह हार ले लूंगी।" ननद के इन प्रिय शब्दों को सुन कर भौजाई प्रसन्न हुई और कहने लगीं—"बैया, मैं तुम्हारा हाथ चूमती हूँ, तुम्हारे मुंह में घी-गुड़ देती हूँ। जो तुम्हारे वचन सफल हुए, और मेरी गोदी भर गई तो मैं तुम्हें अपना हार सहर्ष दे दूंगी।"

भोर भये भुनसारे ललन प्यारे हो गए महाराज।
धीरे-धीरे बाजें बधैयाँ धीरें सखी सोहरे महाराज।
जै सुन पैहें ननदिया हार मोरे लै लैहें महाराज।
भोर भये भुनसारे ननदबाई आ गईं महाराज।
कैसी बाजें धीरीं बधैयाँ कैसे धीरे सोहरे महाराज?
भौजी के जनमे नंदलाल कै धियारी[1] महाराज।
बैया हम जन्मे नंदलाल धिया तुम जनो महाराज।

---

१ धियारी = लड़की।

गाँव के ढिमरा पकर मँगवैयो महाराज।
अक्का धतूरे की जरें खुदवा मँगवैयो महाराज।
विस लुड़िया पिसवैयो कटोरन छानिये महाराज।
सो बारी बयाखों दियो पियाय हार मोरो बच जैहै महाराज।
माँयसें[1] आ गए राजा वीरन वे हँस बोलियो महाराज।
जो पूजे सो दे बहन मोरी जिन[2] मारो महाराज।

ननद का भविष्य कथन सच निकला। नौ दस मास के उपरान्त वधू के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे पुत्र होने का आनन्द तो हुआ परन्तु उसे अब यह चिन्ता लग गई कि ननद मेरा हार ले लेगी। अतः उसने धीरे-धीरे बाजे बजाने तथा धीरे-धीरे सोहरे गाने की ताकीद कर दी, जिससे खबर ननद के कानों तक न पहुँचने पावे। ननद उसी गाँव में रहती थी। उसे खबर लग गई और सबेरा होते ही वह भौजाई के घर आ धमकी। उसने आते ही भौजाई से पूछा—"भौजी, क्या बात है? धीरे-धीरे बाजे क्यों बज रहे हैं और धीरे-धीरे सोहरे क्यों गाये जा रहे हैं? उत्साह क्यों मंद है? क्या लड़की पैदा हुई है?" प्रथम तो भौजाई को ननद का आना ही अच्छा न लगा था। उसे अपना हार छिन जाने का भय था। उस पर यह अप्रिय प्रश्न। भौजाई उबल पड़ी। वह तो बिगाड़ के लिए कोई बहाना खोजने की फिक्र ही में थी। उसे अवसर मिल गया। वह रूखे स्वर से बोली—"बैयाजी, मेरे तो नन्दलाल हुए हैं। तुम ऐसा अशुभ क्यों भाखती हो? लड़की तो हो तुम्हारे।"

हिन्दू घरों में क्वचित ही कोई ऐसा दृष्टान्त मिलेगा जहाँ ननद-भौजाई का सौहार्द चलता हो। वधू जब ससुराल में आती है और

---

१ माँयसे = वहाँ से। २ जिन = मत, नहीं।

इस नये घर पर अपना स्वामित्व स्थापित करती है तो उसे पग-पग पर ननद के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। ननद उसी घर की लड़की होती है, अतः उस पर उसके माता-पिता तथा भाई का सहज विश्वास होता है। ननद झूठ भी कह दे तो वह सच माना जाता है। मतलब यह कि हर तरह से ननद का पलड़ा भारी होता है। इस कारण वधू ननद को अपना सब से अधिक प्रतिरोधी समझती है और उनके मध्य चिरद्वेष की अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। यह वधू ननद के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पर भी अपना वह चिरन्तन विरोध भूल नहीं सकी है। ननद को हार देना उसे अखर रहा है। इसके लिए वह अनैतिक उपायों से काम लेने में भी नहीं झिझकी। वह विष खिलाकर ननद को मार डालने की सोचती है। उसने नगर के ढीमरों को बुलाकर उनके द्वारा आक और धतूरे की जड़ें मँगवा कर ननद को पिलाने का षड्यंत्र रचा। सौभाग्य से उसके पति को इसका पता चल गया। बहन-भाई की प्रीत अलौकिक होती है। भाई अपनी बहन का मारा जाना कैसे सहन कर सकता है? उसने अपनी पत्नी से कहा—"प्रिये, तुम यह क्या नादानी कर रही हो? तुम्हें अपना हार प्यारा है और उसे नहीं देना चाहतीं, तो मत दो। हँसी-खुशी से जो दे सको, वह दो। पर, मेरी बहन को तो मत मारो।"

काशी के पंडित बुलैयो वेद बचैयो महाराज।
लरका के आनुल को गोत[1] सुनवाइयो महाराज।
आजा उनके राजा महाराजा आजी पटरानिआँ महाराज।
भैया उनके अर्जुन भीम, बहन सहुद्रा-सीं महाराज।
लरका के नाना को गोत बाँच सुनवाइयो महाराज।
नाना उनके असल चमार नानी जोरें जूतियाँ महाराज।

---

१ गोत = गोत्र, वंश का विवरण।

भैया उनके मृदंग बजावें बहन जगबेड़नी[२] महाराज।
मो जगबेड़नी को लाला कोऊ नै खिलाइयो महाराज।
तोरे नई भौजी लाला गरब नई कीजिये महाराज।
जे अर्जुन-भीम के लाला सबई खिलाइये महाराज।

(गायिका—लेखक की पत्नी)

समाज में ननद-भावज के प्रति जो चिरन्तन विद्वेष-भाव चला आता है, उसकी झाँकी हमें इस गीत में देखने को मिलती है। ननद-भावज का झगड़ा उतना ही पुरातन मालूम होता है, जितना कि हिन्दू सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का जन्म। इस विद्वेष का एक मनोवैज्ञानिक कारण है। यह मानी हुई बात है कि ननद अपने माँ-बाप की लड़ैती पुत्री होती है। घर के प्रबन्ध में वह अपने को एक विशेष अधिकारिणी समझती है। इतने में एक अपरिचित घर की लड़की उसके घर पर आकर गृह-साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करती है। ननद भला यह कैसे सहन कर सकती है। फलतः भावज के प्रति उसके मन में सहज ईर्ष्या-भाव उत्पन्न हो जाता है। समाज में निम्न श्रेणी के घरों में ही नहीं, प्रत्युत् उच्च परिवारों में भी ननद हमेशा अपनी भावज को अपदस्थ करने की चेष्टा करती देखी जाती है। इस गीत में ननद-भौजाई का द्वेष उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। द्वेष बढ़ने की बात ही है। भौजाई ने हार देने का वादा करके उसे मार डालने का षड्यंत्र रचा। ननद बिना अपराध ज्यादती करने का दावा रखती है, फिर यहाँ तो अपराध ननद का नहीं, भावज का है। ऐसी दशा में वह पीछे पाँव क्यों रखे? उसने दोज का बदला तीज को देने की युक्ति खोज निकाली। काशी से पंडित बुलाकर नवजात शिशु के आजा तथा

२ जगबेड़नी = ग्राम नर्त्तकी।

नाना का गोत्र बखानने का आयोजन रचा गया। पंडित साथ लिया गया। दस आदमियों के बीच भौजाई को अपमानित कराना ननद का ध्येय था। पंडित शास्त्रोच्चार करने बैठा। आजा का गोत्र-वर्णन करते हुए उसने कहा—"इस बच्चे का आजा राजा और आजी महारानी हैं। उसके पिता, काका, अर्जुन-भीम के समान और फुआ कृष्ण की बहन सुभद्रा के समान हैं।" अब नाना का गोत्र बखानने को कहा गया। पंडित बोला—"इस बच्चे का नाना जाति का असल चमार है। नानी जूतियाँ जोड़ती है। उसके मामा मृदंग बजाते हैं; और उसकी मौसिआँ बेड़नी हैं—गाने, बजाने तथा नाचने का पेशा करती हैं।"

भौजाई ने जब अपने मायके वालों की निंदा सुनी, तो वह जल-भुन कर कड़ाही का बैंगन बन गई। वह बोली—"जब मैं बेड़नी हूँ, तो मेरे बच्चे को कोई मत छूना।" ननद ने नहले पर दहला फेंकते हुए कहा—"भौजी, गर्व मत करो। बच्चा तुम्हारा नहीं, मेरे भाई अर्जुन-भीम का है। उसे सब खिलावेंगे।"

बधाये

जन्म के समय के समस्त उत्सवों तथा रीति-रिवाजों के समय संचत तथा सोहर गीतों के साथ अधिकांश रूप में बधाये ही गाये जाते हैं। बधावा शब्द स्वतः आनन्दवाचक है। 'बधाई' नामक एक नृत्य भी स्त्रियाँ नाचती हैं। इस नृत्य के समय हर्षातिरेक से लोग सैकड़ों रुपया निछावर कर देते हैं। बच्चे की फुआ की ओर से उसके जन्म के दसवें दिन जो वस्त्राभूषण आते हैं, उसे 'बधावा लाना' कहते हैं।

बधाये गीतों में पुत्र-जन्म द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्दोल्लास की झलक तो रहती ही है, परन्तु साथ-साथ उनमें हास-परिहास का भी काफी पुट रहता है। हिन्दू परिवारों में सास-ननद के साथ बहुओं का झगड़ा सर्वश्रुत तथा सर्वव्यापी है। बहू सास-ननद के साथ क्वचित ही तादात्म्य स्थापित कर पाती है। विवाह-सूत्र द्वारा दो विभिन्न परिवारों के सदस्य, जिनके स्नेह-तंतु भिन्न-भिन्न परिवारों से बँधे रहते हैं, मिलकर एक नये संसार की सृष्टि करते हैं। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि वधू पतिगृह में आकर जब अपना स्वामित्व स्थापित करती है, तो वह पति-परिवार के प्रति उतनी सदय और ममतापूर्ण नहीं हो पाती है। इसी-लिए बहुओं के साथ सास-ननद का अनैक्य और भेदभाव सदा से चलता आ रहा है। इन बधाये—गीतों में सास-ननद के प्रति होने वाले झगड़ों

और वाद-विवाद का भी यथेष्ट वर्णन रहता है। नीचे कुछ बधाये लिखे जाते हैं:—

१

जो बंदनबारो कहाँ लँय जातीं, जो बंदनबारो।
नगर अयोध्या में सुत भये सजनी राजा महीपति के नाती।
राजा दशरथ कें पुत्र भये हैं रघुकुल जोत उजयार दई बाती।
उजयार दई बाती[1] जो बंदनबारो कहाँ लँय जातीं।

रानी कौशिल्या की कूख जुड़ानी—
सब सखियों की शीतल भई छाती।
नगर अयोध्या में दान भये हैं—
लै लै दान मगन भईं सखियाँ।
मगन भईं सखियाँ जो बंदनबारो कहाँ लँय जातीं।

खवासन बंदनवारा लिये जा रही थी। मार्ग में किसी ने पूछा—"अरी खवासन, यह बंदनवारा कहाँ लिये जाती हो?" खवासन उत्तर देती है—"क्या तुमने नहीं सुना, अयोध्या के बूढ़े महाराज के नाती और महाराजा दशरथ के पुत्र उत्पन्न हुआ है। रघुवंश में नई ज्योति जली है, जिससे रघुकुल प्रकाशित हो उठा है। पुत्र-जन्म से रानी कौशल्या की कोख तृप्त हुई है और सब सखियों का हृदय शीतल हुआ है। पुत्र-जन्म की खुशी में जो दान दिया गया है उसे पाकर सब सखियाँ आनन्द-मग्न हो रही हैं। यह बंदनवारा वहीं—राजमहल को लिये जाती हूँ।"

---

१ उजयार दई बाती = ज्योति जला दी।

२

मोरी भौजी कें लाला भये,
नन्दलाला भये मैंने खब़र जो पाई आधीरात।
अबै मोरें को सुनरा कैं जैहे, बहुर मोरें को सुनरा कैं जैहे।
उठो मोरे राजा खोलो कुची-तारें ऐंन्नो मुहरें पचास।
अबै मोरें को सुनरा कैं जैहे।

काहे के चार चूरा छिगुनियाँ काहे की करधुनियाँ।
सुन्ने के चार चूरा छिगुनियाँ रूपे की करधुनियाँ।
अबै मोरें को सुनरा कैं जैहे।

काहे की बा टोपी झँगुलिया कै सौ लगीं फुँदरियाँ।
हरे कसब की टोपी झँगुलिया सोरा सौ लागी फुँदरियाँ।

ननद को आधीरात के समय भतीजा होने की खबर मिलती है। वह विचार-मग्न हो जाती है कि मुझे शीघ्र बधावा लेकर जाना होगा। जेवर गढ़वाने सुनार के घर कौन जायगा? उसने पति को जगाकर कहा—"प्राणेश्वर! उठो, मेरी भौजाई के पुत्र उत्पन्न हुआ है। बधावा बनवाने के लिए संदूक से पचास मुहरें निकालो।" पति-पत्नी में विचार-विमर्श हुआ। आखिर तय हुआ, सोने के चूरा और छिगुनीं तथा चाँदी की करधौनी बनवाई जाय। विचार आगे बढ़ा। टोपी किस कपड़े की बनवाई जाय और झँगुलिया किसकी? निश्चय हुआ, हरे रेशम की टोपी और झँगुलिया बनवाई जावे और उसमें सोलह सौ फूंदरा लगवाये जावें।

रुमकत झुमकत आईं बारी ननदी पौंची वीरन दुआर।
आओ मोरी बहनी बैठो गलीचों राखें तुमारो मान।
पुरा-परौसन सब जुड़ आईं काहो ल्याईं बधाव।
देख बधाव आनन्द भई सखियाँ वीरन आगे धर दीनो।
भैया-भौजी दोई मतो करत हैं काहो बहन खों देयें।
पीतर के चार चूरा ल्याईं काँसे की करधुनियाँ।
हरे अमौआ की टोपी झँगुलिया एकऊ न लागी फुँदरिया।
सौ को ल्याये पचासई नै पाये हम झख मारन आये।
(गायिका—लेखक की पत्नी)

ननद पूर्व निश्चय के अनुसार बधावा लेकर मृदु-मधुर गति से भाई के घर पहुँची। बहन को आती देख भाई ने उसका स्वागत किया, गलीचे पर बिठाया। ननदबाई बधावा लेकर आई हैं, यह खबर पाते ही पुरा-पड़ौस की सब स्त्रियाँ जुड़ आईं। बधाये का सामान देखकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं। बधावा जेठे-बड़ों सबको दिखाया गया। बुलौआ हुआ। अब बिदा की बारी आई तो भैया-भौजी दोनों विचार करने बैठे। कितने का सामान आया है और बहन को बिदाई में क्या देना चाहिए? भौजाई ननद के प्रति सदय नहीं है। वह सोने के जेवर को पीतल का और चाँदी के जेवर को काँसे का बतलाकर तथा रेशम के वस्त्र को अमौआ कहकर सौ की लागत पर पचास भी नहीं देती है। बेचारी ननद बिदाई लेकर घर जाती है। रास्ते में सोचती जाती है, क्या मैं यहाँ झख मारने आई थी?

३

मैं तो अकेली राजा मोरो घर न लुटाय दियो।।
सास बाई आवें उन्हें लौटाय दियो।
चरुआ चढ़ावे मोरी माय खों बुलाय लियो।।

जिठानी रानी आवें उन्हें लौटाय दियो।
लड़ुवा बँधाबे मोरी भौजी खों बुलाय लियो।।
देवरानी रानी आवें उन्हें लौटाय दियो।
पच बनबावे मोरी काकी खों बुलाय लियो।।
ननद बाई आवें उन्हें लौटाय दियो।
साँतिया धराबे मोरी बहन खों बुलाय लियो।।
परोसन आवें उन्हें लौटाय दियो।
सरियाँ गुआबे मोरी सखियाँ बुलाय लियो।।

(गायिका—गौराबाई, देवरी)

इस गीत की नायिका घर में अकेली है। वह स्वतः पुत्र होने के कारण प्रसूतिगृह में पड़ी है। उसे चिन्ता है कि कहीं मेरा घर न लुट जाय। अतः वह अपने पति से प्रार्थना करती है कि मेरी अनुपस्थिति में मेरा घर न लुटा देना। इस स्त्री का विश्वास पति-परिवार के किसी व्यक्ति पर नहीं है। वह अपने मायके वालों पर भरोसा करती है। पति-परिवार के प्रति वह तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकी। अतः वह उन्हें फूटी आँखों नहीं देखती। वह जानती है कि चरुवा चढ़ाने का नेग सास का है। वे आवेंगी। लड़ुवा बाँधने का काम जिठानी का है, साँतिया लिखने का काम ननद का है। वे सब आवेंगी, इसलिए पति से कहती है—"वे आवें तो उन सबको लौटा देना और उनके बदले मेरे मायके से मेरी माँ, भौजाई, काकी, बहिन आदि को बुला लेना।"

४

बधाव ल्याईं ननदी अरे श्यामलिया।
कहाँ से आई पीपर कहाँ से आई सोंठ।

कहाँ से आईं ननदी अरे श्यामलिया।
सागर से आई पीपर झाँसी से आई सोंठ।
महोबे से आईं ननदी अरे श्यामलिया।
काहे में आई पीपर काहे में आई सोंठ।
काहे में आगईं ननदी अरे श्यामलिया।
पुड़िया में आई पीपर डब्बा में आई सोंठ।
म्याने में आगईं ननदी अरे श्यामलिया।
काहे खों आई पीपर काहे खों आई सोंठ।
काहे खों आगईं ननदी अरे श्यामलिया।
जच्चा खों आई पीपर बच्चा खों आई सोंठ।
नेंग खों आगईं ननदी अरे श्यामलिया।

ननदी बधाव लेकर आई हैं। इस गीत में सोंठ कहाँ से आई, पीपर कहाँ से आई, आदि का विवेचन किया गया है।

५

सोंठ के लड़ुवा चिरपिरे रे।
लड़ुवा बंधावे जिठानी मोरी आईं।
बिन्ना तनक सो लड़ुवा हमें दे राखो।
लड़ुवा फोरत मोरी बैयाँ दुखत है।
सेंगो[1] दओ नईं जाय।
पसेरी भर जिज्जी घी डरो है।

---

१ सेंगो = पूरा।

नरियल के भेला मों डरे हैं।
बदामों के बीजा सो डरे हैं।
चिरौंजी दाने चौथियों सें।
चरुवा चढ़ावे सास मोरी आईं।
बहू तनक सो लड़ुवा हमें दे राखो।
लड़ुवा फोरत मोरे कोंचा दुखत हैं।
सेंगो दओ नईं जाय।

(गायिका—दुर्गाबाई टेनगुरनो, जैतपुर)

इसी तरह देवरानी, ननद, मौसिया-सास आदि का नाम लगाकर गीत आगे बढ़ता जाता है। इस गीत में एक कृपण स्त्री का चित्र चित्रित किया गया है। जच्चा के लिए सोंठ बिस्वार के लड्डू बाँधे गये हैं, जिसमें खूब घी और चिरोंजी, बदाम आदि मसाला डाला गया है। लड्डू बाँधने जिठानी आती है। वह कई घंटे परिश्रम करके लड्डू बाँधती है। रीति के अनुसार इन लड्डुओं में से एक-एक लड्डू कुटुम्ब-परिवार तथा पाँच-सात कन्याओं को प्रथम बाँटे जाते हैं, पीछे जच्चा खाती है। पर, जब लड्डू बाँधने वाली जिठानी को भी लड्डू नहीं दिया गया, तो वह स्वतः माँगती है। घर-स्वामिनी कहती है—"जीजी, लड्डू फोड़ने में मेरे हाथ दुखते हैं, और पूरा लड्डू दिया नहीं जा सकता है, क्योंकि उनमें बहुत कीमती मसाला पड़ा हुआ है।" बेचारी जिठानी खाली हाथ चली जाती है। चरुवा चढ़ाने सासजी आती हैं। उन्हें भी लड्डू चाहिए। पर वह देती नहीं है। बहूरानी वही ऊपर कहा हुआ कारण सास को भी बतला टरका देती है। इसी प्रकार देवरानी, ननद आदि नाम लगाकर गीत पूरा किया जाता है।

६

माँगो-माँगो री ननद बैया जो माँगो सो देंय।
अन्न तो जिन[1] माँगो बैया बंडा[2] को सिंगार री।
अन्न में से तेवरा लै जा देवली लैहों काढ़ री।
बासन[3] सो जिन माँगो बैया चौका[4] को सिंगार री।
बासन में से लुटिया लै जा कुढ़री लैहों काढ़ री।
माँगो-माँगो री ननद बैया जो माँगो सो देंय।
जेवर तो जिन माँगो बैया डब्बन को सिंगार री।
जेवर में से नथनी लैजा सरजा[5] लैहों काट री।

इस बुन्देलखंडी लोकगीत में कितने सुन्दर ढंग से परिहास किया गया है। एक रमणी पुत्रोत्पन्न होने की खुशी में आनन्द विभोर होकर ननद से कहती है—"ननदबाई, आज आनन्द की घड़ी है। जो माँगना हो, माँग लो। जो तुम माँगोगी, मैं वही दूंगी। परन्तु, अन्न मत माँगना क्योंकि वह बंडा (अन्नागार) का शृंगार है। पर, जो तुम अनाज ही चाहो तो मैं तुम्हें तेवरा दे सकूंगी और इस पर भी उसकी देवली निकाल लूंगी अर्थात् केवल भूसी ही हाथ लगेगी। ननदबाई आज जो माँगना हो, माँग लो। परन्तु, बाईजी, बर्तन मत माँगना, क्योंकि वे रसोई घर के आभूषण हैं। यदि तुम बर्तन लेने का ही हठ करोगी, तो मैं तुम्हें एक लुटिया दूंगी, परन्तु उसकी भी कुढ़री निकाल लूंगी। जेवर भी मत माँगना। यदि तुम जेवर का ही हठ करोगी तो तुम्हें नथनी दे दूंगी, परन्तु उसका भी सरजा काट लूंगी।"

---

१ जिन = मत, नहीं। २ बंडा = अनाज रखने की जगह, अन्नागार। ३ बासन = बर्तन। ४ चौका = रसोई-घर। ५ सरजा = नथ में लगे हुए मोतियों का झूमका।

माँगो-माँगो री ननद बैया जो माँगो सो देंय।
उन्ना[1] तो जिन माँगो बैया पेटी को सिंगार री।
उन्ना में से अँगिया[2] लैजा तनियाँ लैहों काट।
ललुआ तो जिन माँगो बैया गोदी को सिंगार री।
पलका पैके राजा लैजा धक्का दैहों चार।
माँगो माँगो री ननद बैया जो माँगो सो देंय।

(गायिका—श्यामाबाई, सहराई जिला गुना)

"ननदबाई माँगो-माँगो, आज जो माँगोगी, वही दूँगी। आज खुशी का दिन है। पर, कपड़ा मत माँगना। यदि कपड़ा ही चाहोगी तो कपड़ों में से केवल अँगिया दे सकूँगी, पर उसकी भी तनी काट लूँगी। एक बात जताये देती हूँ, कहीं तुम मेरे लाला ही को मत माँग बैठना। वह मेरी गोदी का आभूषण है। यदि तुम उसीका हठ करोगी, तो मैं उसके बदले अपने पलंग के आभूषण—अपने राजा को दे दूँगी। पर जाते समय तुम्हें चार धक्के लगाकर घर से निकाल दूँगी। माँगो-माँगो, आज जो माँगोगी, वही दूँगी।"

इस प्रकार यह चतुर स्त्री सब कुछ देने का वादा करके, कुछ भी देना नहीं चाहती है।

---

१ उन्ना = यह शब्द ऊर्णा से बना है, जिसका अपभ्रंश ऊन है। पर बुन्देलखंड में साधारण कपड़ों के लिए यह शब्द प्रयोग में लाया जाता है।
२ अँगिया = चोली।

सरिया गीत

हिन्दू संस्कृति में राम और कृष्ण ये दो नाम आदर्श माने जाते हैं। वे हमारे प्रत्येक रीति-रिवाज में इस तरह घुलमिल गये हैं कि हम हर अवसर पर उन्हीं से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। इस तरह राम केवल अयोध्या के राम न रहकर, और कृष्ण केवल मथुरा या गोकुल के कृष्ण न रहकर सारे देश के बन गये हैं। बच्चों के जन्म, विवाह आदि के समय जो गीत गाये जाते हैं, उनमें से अधिकांश राम-कृष्ण के ही गीत होते हैं। स्त्रियाँ अपने शिशुओं को राम-कृष्ण का प्रतीक अनुभव करती हैं। उनके गुणों तथा सौन्दर्य की कल्पना भी अपने शिशुओं में करती हैं। जब किसी के घर पुत्र उत्पन्न होता है, तो स्त्रियाँ तुरन्त गाने लगती हैं—"आली ब्रज में नन्दलाला भये।" जब कोई माता अपने बच्चे को पालने में सुलाती है तो गाने लगती हैं—"झुला दे मैया श्याम परे पलना।" विवाह के समय जब किसी के घर लगुन आती है, तब स्त्रियाँ गाती हैं—"आज मोरे रामजू खों लगुन चढ़त है" इत्यादि। कहने का सारांश यह कि राम-कृष्ण सारे समाज के आदर्श बालक माने जाते हैं और राजा दशरथ तथा बाबा नन्द की गृहस्थी आदर्श गृहस्थी। जन्म-समय के बुन्देलखंडी गीतों में राम-कृष्ण के गीतों की प्रचुरता है। जब किसी के घर पुत्र उत्पन्न होता है, तो हमारा लोक-साहित्य उसे राम-कृष्ण का जन्म ही अनुभूत करता है। शिशु के भूमिष्ठ होते ही "भौं-लोटनी" का

बुलौवा होता है। उसके पश्चात् नरा छीना जाता है। इस अवसर पर गाये जानेवाले दो-एक गीत उदाहरण-स्वरूप यहाँ दिये जाते हैं।

१

मोरें डरे डरे कहराँय[1] गोविन्दलाल भौं में डरे।
मोरे डरे डरे कहराँय गोपाललाल भौं में डरे।
जाय जो कैयो[2] उन राजा ससुर सें थैली देंय लुटाय।
गोविन्दलाल भौं में डरे।
जाय जो कैयो उन राजा जेठ सें बजाजी देंय लुटाय।
जाय जो कैयो उन राजा देउर सें गन्ता[3] देंय कराय।
जाय जो कैयो उन राजा नंदेऊ सें डेवढ़ा[4] देंय छुटाय।
जाय जो कैयो उन बारी ननद सें साँतिया देंय धराय।
जाय जो कैयो रानी सास सें चरुवा देंय चढ़ाय।
जाय जो कैयो पुरा-परोसिन सें सरियाँ देवें गुआय।

(गायिका—खेमाबाई दुबन, बिचुवा)

किसी रमणी के पुत्र उत्पन्न हुआ है। बच्चा भूमि पर पड़ा हुआ कहर-कहर रो रहा है। अहा! कितना श्रुति-मधुर शब्द है। यह कहर-कहर रोने का शब्द माता-पिता तथा सम्बन्धी-जनों के हृदयों में जिस अपरिमित आनन्द की सृष्टि करता है उसकी नाप-तौल असम्भव है। माता पुत्र-जन्म के हर्ष से उत्फुल्ल होकर संदेशा दे रही है, कोई ससुरजी

---

१ कहराँय = कहराना, पैदा हुए बालक का रोना। २ कैयो = कहना। ३ गन्ता = शिशु-जन्म के उपलक्ष में किया जानेवाला गायन-वादन का समारोह। ४ डेवढ़ा = बन्दूकें चलवाना।

से जाकर कहदे कि वे नाती उत्पन्न होने की खुशी में थैलियाँ लुटा दें। जेठ से जाकर कह दो कि वे बजाजी लुटा दें। देवर से जाकर कहो कि वे गन्ता कराने को तैयारी करें। ननद से कहो कि वे साँतिया लिखें। और ननदेऊ से कहो, वे बन्दूकों के डेवढ़ा छुटावें। इसी तरह सबको अपना-अपना कार्यभार सँभालने को वह सन्देश दे रही है। मातृ-हृदय की हर्षोन्मादिनी दशा दर्शनीय है।

नरा छीनने का गीत

१

कैसी मचल रई दाई, अवध में कैसी मचल रई दाई।
सुरंग चूनरी कौशिल्या लँय ठाड़ीं बई न लेबे दाई।
सोने को हार कैकई लँय ठाड़ीं, कूलो मरोर गई दाई।
सोने की तिलरी सुमित्रा लँय ठाड़ीं, मुखई न बोले दाई।
मुतियन थार राजा लँय ठाड़े नजर न फेरे दाई।
नरा तुमारो जबई हम छीने दरशन दें रघुराई।
रूप चतुर्भुज प्रभु दरसायो, खुशी भई तब दाई।
दरसन लै दाई घर खों आई घर-घर करत बड़ाई।

(गायिका—खेमाबाई, बिचुवा)

महाराज दशरथ के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है। दाई नरा छीनने को प्रस्तुत है। परन्तु, पहले वह अपना नेंग चाहती है। रानी कौशल्या सुरंग-चूनरी लिए खड़ी हैं, वह उसे नहीं जँची। रानी कैकई सोने का हार लिए खड़ी हैं। वह 'कूलो मरोरकर' अपना मुंह दूसरी ओर फेर लेती है। रानी सुमित्रा तिलरी लिए खड़ी हैं और स्वतः महाराज मोतियों

भरा थाल लिए खड़े हैं। उस पर भी उसकी निगाह नहीं है। आखिर यह दाई चाहती क्या है? सोने के हार, मोतियों का थाल सभी उसकी दृष्टि में नगण्य हैं। तो फिर वह निस्सन्देह इनसे भी अधिक कोई कीमती वस्तु चाहती होगी? आज उसका अवसर है, आज न मचलेगी तो फिर उसे आगे क्या मिलेगा? दाई भगवान् की भक्त है। सोना-चाँदी और मोतियों का थाल उसकी दृष्टि में मिट्टी के ढेले से अधिक मूल्य नहीं रखता। वह आज के नेंग में प्रभु के दर्शन चाहती है। उसने प्रतिज्ञा कर रखी है, जब प्रभु दर्शन देंगे तभी नरा छीनूंगी। प्रभु धरती पर कब तक पड़े रहें? न नरा छिनेगा और न स्नान कराके वे सूप में पौढ़ाये जायेंगे। दाई चतुर थी। वह नेंग लेने की कला में प्रवीण है। भला वह इस अवसर को क्यों छोड़ने चली। केवट के समान उसने भी आज अपनी टेक टेक दी। दाई के हृदय का प्रेम देखकर भक्त-वत्सल प्रभु ने उसे अपने चतुर्भुज-रूप का दर्शन दिया। प्रभु का दर्शन पाकर दाई मगन हो गई। इस जीवन में सच्चा नेंग उसे आज ही तो मिला है। अभी तक तो वह चाँदी-ताँबे के टुकड़े ही बटोरती रही है। नरा छीनकर अपने भाग्य की सराहना करती हुई दाई घर चली गई।

२

आली ब्रज में महाराज भये।
सखी ब्रज में गोपाल भये।
जब हरि जनम लये मथुरा में।
जगत पहरुआ सोय रहे।
लै वसुदेव चले गोकल खों।
झपट कें जमना मैया चरण गहे।

आँगू धसे जमना जल गहरीं पीछूँ सिंघ गुंजार रहे।
उल्टी रीति भई गोकल में कन्या दे गोपाल लये।
कौना जाये कौना खिलाये कौना के लाल कहाये?
देवकी ने जाये जसोदा खिलाये नन्द के लाल कहाये।
काहे के छुरा नरा छीनियो काहे खपर असनान?
सुन्नें छुरा नरा छीनियो रूपे खपर असनान।
काहे के सूप सँजोइयो काहे के आखत डार दये?
उरहई के सूप सँजोइयो, मुतियन आखत डार दये।

(गायिका—वेदवंतीबाई, खैरी, पो० देवरी)

ब्रज में महाराज कृष्णचन्द्रजी नें अवतार लिया। उस समय जेल के सभी पहरेदार सो गए। वसुदेव नवजात शिशु को टोकनी में रख गोकुल को चले। आगे अगाध यमुना भरी थीं, पीछे वन में सिंह गरज रहे थे। वसुदेवजी यमुना में धँस पड़े। श्रीकृष्ण का एक चरण टोकनी के बाहर निकला था। यमुनाजी चरण-स्पर्श की लालसा को न रोक सकीं। वे क्रमशः बढ़ने लगीं और चरण-स्पर्श करके ही शान्त हुई।

गीत में कहा गया है कि गोकुल की उल्टी रीति है—कन्या देकर गोपाल को ले लिया। इतनी बड़ी ठगी! किसने जाये, किसने खिलाये और किसके लाल कहलाये ? देवकी ने जाये, यशोदा ने खिलाये और बाबा नन्द के लाल कहलाये। किस छुरा से नरा छीना गया ? किस खप्पर में स्नान कराया गया ? सोने के छुरे से नरा छीना गया। चाँदी के खप्पर में स्नान कराया गया। उरई के सूप सँजोये गये तथा मोतियों की अक्षत डाली गई।

कुआ-पूजन के गीत

बच्चा होने के प्रायः एक मास पश्चात् कुआ-पूजन का दस्तूर किया जाता है। परन्तु, जो श्रमजीवी हैं—जो अधिक समय तक प्रसूता वधू को घर के भीतर नहीं रख सकते, वे जन्म दिन से १०—१२ दिन के भीतर ही यह दस्तूर कर लेते हैं। कुआ-पूजन के दिन से प्रसूता वधू को घर से बाहर निकलने तथा कुएँ, नदी आदि पर जाने की छूट मिल जाती है। कुआ-पूजन के लिए बुलौवा दिया जाता है। स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। इस तरह माँ बनने के बाद पहली बार बुन्देलखंडी बहू पानी भरने के लिए कुएँ पर जाती है। पाँच-सात कन्याएँ तथा सुहागिन स्त्रियाँ भी कलश लेकर पानी भरने उसके साथ जाती हैं। कुएँ पर पहुँचकर दुलहिन गोबर से कुएँ की जगत पर, यदि कन्या हुई है तो पाँच और पुत्र हुआ है तो सात जगह गोलाकार लीपती है। उन पर चौक पूरती है और हल्दी, गुड़, चाँवल से पूजा करती है। वह अपने स्तन से पाँच-सात बूंद दूध कुएँ में निचोड़ कर कहती है—"जैसे तुम भरे-पूरे हो, वैसे ही मेरे स्तनों को दूध से भरा-पूरा रखना।" इतना कर चुकने के बाद वह कुएँ से पानी निकालती है और अपना तथा कन्याओं का कलश भरती है। सब स्त्रियाँ गीत गाती हुई बाजे-गाजे के साथ घर लौटती हैं। घर के द्वार पर आते ही स्त्रियाँ गा उठती हैं—"है कोई

बखरी में लोग हमारो कोई गघरी उतार लो।" कुआ-पूजन के दो-एक गीत नीचे दिये जाते हैं।

१

ऊपर बदल घुमड़ाँय गोरीधन पनियाँ खों निकरीं।
जाय जो कैयो उन राजा ससुर सें अँगना में कुइया खुदाव।
तुम्हारी बहू पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कैयो उन राजा जेठा सें चंदन पाटें डराव।
तुम्हारी बहू पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कैयो उन राजा देवर सें रेशम डोरी डराव।
तुम्हारी भौजी पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कैयो उन राजा पिया सें सोने घड़ा बनवाव।
तुम्हारी धन पनियाँ खों निकरी।

(गायिका—लेखक की पत्नी)

नारी-जन्म की परम सार्थकता प्राप्त करके तथा गृहस्थी के चिर-आकांक्षित परमधन पुत्र-रत्न को प्रसव करके बुन्देलखंडी दुलहिन जब प्रथम बार पानी भरने के लिए कुएँ को जाती है, तो वह अपने ससुर, जेठ, देवर, पति आदि से यथोचित सम्मान की अभिलाषा करती है और इसीलिए वह सन्देश भेजती है कि कोई जाकर मेरे राजा सदृश ससुरजी से कह दे कि वे बखरी के आँगन में ही कुआँ खुदवा दें, जिससे उनकी बहू

को दूर पानी भरने न जाना पड़े। इसी तरह वह अपने जेठ से चंदन-पाट तथा देवर से रेशम-डोरी डालने की माँग करती है।

२

फुल बगियों हो राजा बरसे मेह गोरी भींज गई गलियों म।
गोरी जो भीजें भींजत जान दो, घुँघटा हो राजा लियो बचाय।
घुँघटा भीजें तो भींज जान दो, नैना हो राजा लियो बचाय।
नैना जो भीजें भींज जान दो, गलुत्रा हो राजा लियो बचाय।
गलुवा जो भीजें भींज जान दो, सारी हो राजा लियो बचाय।

बादल घुमड़ने की चर्चा पहले गीत में की गई है। अब कुएँ से खेप लेकर चली, तो मार्ग में पानी बरसने लगा। युवती कलश लिए चली आ रही है। पानी बरस रहा है और वह भींग रही है। वह अपने पिया से अपने उतरोत्तर आकर्षक अंगों को बचाने के लिए प्रार्थना करती है। इस गीत में नारी-हृदय का प्रेम किस सरसता के साथ छलकता हुआ दिखाया गया है!

३

जल भरें रेशम की डोर मोरी ए गुइयाँ।
रेशम डोरी जबई बिराजें सुन्ने घड़ेला होय, ए गुइयाँ।
सुन्ने घड़ेला जबई बिराजें मोतन कुड़रिया होय, ए गुइयाँ।
मोतन कुड़री जबई बिराजें रेशम चुनरिया होय, ए गुइयाँ।

रेशम चुनरी जबई बिराजें ओली ललनवा होय, ए गुइयाँ।
ओली ललनवा जबई बिराजें राजा हँसैया होय, ए गुइयाँ।

रेशम की डोरी से जल भरती है। पर रेशम-डोरी तब अच्छी लगती है जब सोने का घड़ा हो। सोने का घड़ा तब अच्छा लगता है जब मोतियों की कुड़री हो। मोतियों की कुड़री तब अच्छी लगती है जब पनिहारी रेशमी चुनरी पहिने हो। रेशम की चुनरी तभी अच्छी लगती है जब उस पहननेवाली की गोद में बच्चा हो और गोद में बालक तब अच्छा लगता है जब उसका पति बच्चे को देख-देख कर सिहाता हो।

४

चलो देवरनियाँ चलो जिठनियाँ हिलमिल पनियाँ चलिये लाल।
ऐंले कुआ को तुम भर ल्याओ, पैले खों हम जैहें लाल।
ऐंले कुआ में ऊँदा न बूँदा, पैले में डुबकैंयाँ लाल।
घैला न फूटो गघरी नैं फूटी माथे की बिंदिया चमकी लाल।
पानी भरकें पौरन आईं, ससुरा कहे बहू दारी लाल।
दारी तोरी बैन मतारी मैं हो बड़े की बेटी लाल।
लीलो सो घुड़ला बगल बँधो है ओई चढ़ मयके जैहों लाल।
दादा मारे भाई मारे तो मामन कैं भग जैहों लाल।
मामा ने ले दई सुरंग चुनरिया माईं ने झुमकैया लाल।

(गायिका—शांतिबाई पचोरन, सोनपुर, पो० रहली)

इस गीत में एक उद्दंड नायिका का चरित्र-चित्रण किया गया है। वह रमणी अपनी देवरानी-जिठानी को उस कुएँ पर भेजती है, जिसमें एक बूंद पानी नहीं है और स्वतः ऐसे कुएँ पर जाती है, जिसमें अथाह पानी। लौटने पर विलम्ब से आने के कारण ससुर जब उसे डाँटता है, तो वह अपने मायके को भाग जाती है। उसके माँ-बाप उसकी इस उद्दंडता पर उसे भला-बुरा कहते हैं, तो वह अपने मामा के पास भाग जाती है। मामा उसे सम्मान से रखते हैं।

झूला के गीत

कुआ-पूजन क पश्चात् झूला डाला जाता है। आज बच्चे को प्रथम बार झूला में सुलाते हैं। अभी दसटौन के दिन से वह सूप ही में सोता था। फुआ झूला झुलाने का नेंग लेकर बच्चे को पहले झूला झुलाती है, बाद में दूसरी स्त्रियाँ। झूला झुलाते समय जो गीत गाये जाते हैं, उनमें इतनी सम्मोहन-शक्ति रहती है कि बालक कितना ही रोता हो, झूले में लिटाकर गीत प्रारम्भ करते ही वह तुरन्त चुप हो जाता है। वह गीत सुनते-सुनते सो जाता है। इन गीतों को लोरी कहते हैं।

लोरी

१

झुला दे रघुवर के पालने री।
झुलाव मोरे हरि के पालने री।
कै मोरी आली सबरे बिरज की सखियाँ।
घेर लये हरि के पालने री।
कै मोरी आली कोरी मटकिया को दहिया।
जुठार गव तोरो श्यामलो री।
कै मोरी आली तू गुजरी मदमाती।
पलन मोरो झूले लाड़लो री।

नन्दलाल झूला झूल रहे हैं। सारे ब्रज की सखियाँ पलना घेरे खड़ी हैं। सब सखियाँ झुलाती हैं, यशोदा रानी पास खड़ी-खड़ी आनन्द लूट रही हैं। इतने में एक सखी उलहना लेकर आती है। कहती है—"अरी यशोदा, देख, तेरा श्याम मेरा मटकी भर दही जुठार आया है।" यशोदा आश्चर्य-चकित होकर कहती हैं—"गूजरी, तू बड़ी मदमाती है। कितना झूठ बोलती है। देख, मेरा श्याम तो पालने में सो रहा है।"

२

झुला दे मैया श्याम परे पलना।
काहू गुजरिया की नजर लगी है।
सो रोउत हैं ललना।
झुला दे मैया श्याम परे पलना।
रानी नोन उतारो जसोदा खुसी भये ललना।
जो मोरे ललना खों पलना झुला है दैहों जड़ाऊ कंकना।

श्यामसुन्दर पलना में पौढ़े हैं। सखियाँ झुला रही हैं। पर, आज वे रोते क्यों हैं? मालूम पड़ता है, किसी गुजरिया की नजर लग गई है। इतना सुनते ही मातृ-हृदय कैसे मान सकता है? यशोदा ने तुरन्त राई-नोन उतारा। राई-नोन उतारते ही श्यामसुन्दर सो गये। यशोदा प्रसन्न हुईं। कहने लगीं, जो मेरे लाल का पलना झुलावेगी, उसे मैं अपने जड़ाऊ कंगन दूंगी। स्नेह की कैसी सजीव झाँकी है। हमारे घरों तथा पुरा-पड़ोस में इस झाँकी के नित्य दर्शन होते हैं। नजर लग जाने की आशंका प्रत्येक बुन्देलखंडी माता को हमेशा बनी रहती है, इसीलिए वह नित्य

राई-नोन उतारती है और सवेरा होते ही बच्चे का मुँह धोकर उसके ललाट पर काजल का डिठौना लगा देती है।

३

मनमोहन उदक न जाँय री हमारे धीरे झुलाव सखि पालने।
काहे को पलना बनो है काहे के बुने हैं बुनाव, हमारे....
चंदन के पलका बने रेशम के बुने हैं बुनाव, हमारे....
सबरे बिरज की सखियाँ जुर आईं घाल लयरी पालने, हमारे....
जो मोरे ललना खों पलना झुला है देहों जड़ाऊ ककना, हमारे....

मेरे लाल कहीं उदक न पड़ें, इसलिए सखियों को माता यशोदा पलना धीरे-धीरे झुलाने का आदेश देती हैं। मातृ-हृदय बालक की सुख-सुविधा के लिए कितना व्याकुल रहता है, इसका दिग्दर्शन इस गीत से मिलता है।

४

देखिये, एक बच्चा मचल रहा है। माता उसे बहलाने की हजार कोशिश करती है, पर वह रोना बंद नहीं करता है। माता उसे झूले में डालकर गीत गाना प्रारम्भ करती है। बालक तुरन्त चुप हो जाता है। माता गाती है:—

तू तो सोजा बारे वीर।।
वीर की बलैयाँ लैहों जमना के तीर।
बर सें बाँधो पालनो पीपर सें बाँधी डोर।
आउत जातन झोंका देऊँ कबऊ नैं टूटे डोर।।

तातो तातो खीर बनाई ऊ में डारो घी।
दो कौर खाले भैया टंडो परजा जी।।

उक्त लोरी सुनकर बालक का मचलना बन्द हो गया है। वह ध्यान से गाना सुन रहा है। अभी वह सोया नहीं है। अतः माता दूसरी लोरी गाना प्रारंभ करती है:—

५

झूल भैया झूल तोरी टोपी में फूल।
चम्पो तोरी कलियाँ चमेली तोरे फूल।
जौ लौं आगव मलिया को पूत।
भैया की छुड़ा लई झंगा झूल।
फट गई टोपी बगर गए फूल।
झूल भैया झूल तोरी टोपी में फूल।

(गायिका—हीराबाई खैरा, हाल देवरी)

बालक सो जाता है और माता पलना छोड़ कर अपने काम में व्यस्त हो जाती है।

चूड़ाकरण तथा अन्न-प्राशन के गीत

बुन्देलखंड में चूड़ाकरण को मुंडन तथा अन्न-प्राशन को पासनी कहते हैं। इन दोनों संस्कारों के लिए कोई नियत समय नहीं है। पर, वे साधारणतः एक वर्ष की उम्र के भीतर हो जाते हैं। इस बीच में यदि बच्चा मामा के घर पहुँच जाय तो मामा पासनी कर देता है। लोग कहते हैं कि बच्चा मामा के घर से भूखा नहीं जाता। मुंडन-संस्कार भी लगभग एक वर्ष या उसके पश्चात् होता है। किसी-किसी कुटुम्ब में किसी विशेष देवी-देवता के स्थान पर जाकर मुंडन कराया जाता है। मुंडन के समय सोहर, बधाये अधिक गाये जाते हैं। मुंडन-समय के कुछ खास गीत भी होते हैं, उनमें से एक नीचे दिया जाता है:—

झालर[1] जबई मुड़ाय हों, जब आजुल घर होंय,
झालर मोरी पाहुनी।
झालर जौ को है खेत, झालर मोरी पाहुनी।
ये झालर के कारने मैंने सहे हैं कष्ट अनेक।
ये झालर के कारने तजे हैं अम्मा इमलिया बेर।
ये झालर के कारने मैंने सहे हैं बोल कुबोल।
झालर मोरी पाहुनी।

(गायिका—गौराबाई मिसरान, देवरी)

---

१ झालर = बालक के केशों को, जब तक मुंडन नहीं होता, झालर कहते हैं। झालरवाले लड़के को झडूला कहते हैं।

लड़कियों के खेल के गीत

स्त्रियों के समस्त कार्य गीतमय होते हैं। हर अवसर पर उनकी कंठध्वनि अमृत की वर्षा करके प्रत्येक कार्य तथा अवसर को आनन्दमय बना देती है। लड़कियाँ जब कुछ बड़ी होकर चलने-फिरने योग्य हो जाती हैं, तभी से निरन्तर उनके गाने का अभ्यास जारी रहता है। वे अपने भाई को झुलाती हैं तो गाती हैं, कोई खेल खेलती हैं तो गाती हैं, माता को जल चढ़ाने जाती हैं तो गाती हैं और नहाने जाती हैं तो गाती हैं। लड़कियों के कुछ गीत नीचे लिखे जाते हैं।

साहुन के झूला का गीत

श्रावण मास है। चारों ओर हरियाली फैली हुई है। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा है। बाड़ियों पर गनगनाकर तुरैया फूली हुई है। ऐसे समय किसी पेड़ की डाली से झूला डाला गया है। मुहल्ले भर की लड़कियाँ झूला झूलने को जुड़ आई हैं। वे बारी-बारी से झूलती हैं और गाती हैं:—

१

एक चना दो देउल री माई साहुन आये।
कौनसी गुइयाँ दूर री माई साहुन आये।
रामकुँवर सी गुइयाँ दूर री माई साहुन आये।
कौना लिवौआ जाँय री माई साहुन आये।

वीरन लिवौआ जाँय री माई साहुन आये।
आगे नौआ पीछूँ बमना बीच बिहन की पालकी
माई साहुन आये।

इस प्रकार झूला झूलते समय ससुराल गई हुई अपनी बहनों तथा सखियों का स्मरण किया जाता है। उन्हें बुलाने के लिए लिवौआ भेजने की कल्पना करती हैं और तुरन्त ही अपने भाव की प्रबलता से उस सखी या बहन को पालकी में आती देखती हैं। सावन के महीने में लड़कियाँ माता-पिता के घर आती हैं। पर, जो कारणवश नहीं आ सकी हैं, उनके मिलन का काल्पनिक आनन्द लड़कियाँ इस तरह गीत गा कर प्राप्त कर लेती हैं।

२

अटा चढ़ें हम हेलरीं कोऊ बूँदी से आये।
बूंदी से आये भैया अमुक राये का भर ल्याये।
कत्था सुपारी डोंडा लायची बेला भर ल्याये।
थार भरे गजमोती सासो खों ल्याये।
पाट की फरिया चीकनी बहनी खों ल्याये।
झुनझुन बिछिया बाजने ननदी खों ल्याये।

(गायिका-श्यामाबाई सहराई, जिला गुना)

श्रावण समीप आ रहा है। सभी लड़कियाँ ससुराल से अपने मायके जाने के लिए आतुर हो रही हैं। एक वधू अपनी सहेलियों के साथ अटा पर बैठकर अपने भाई के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। इसी समय खबर मिलती है, कोई बूँदी से आया है। वधू आतुर होकर नीचे

उतरती है। मालूम होता है, उसके भाई आये हैं। अब प्रश्न उठता है कि वह क्या-क्या सामान किसके लिए लाया है? मालूम होता है, सास के लिए थाली भर मोती, बहिन के लिए पाट की फरिया और ननद के लिए बजना बिछिया लाये हैं। बहिन आनन्द-मग्न हो जाती है। भाई-बहिन का स्नेह अलौकिक होता है।

३

ओई बरी तरें खेलत ते ओई के टोरे पात मुदरी तामे की।
खेल-खाल कें घरै जो आये माई किबारी खोल मुदरी तामे की।
खिरकी में हो भीतर आई माई ब्यारी देव मुदरी तामे की।
उतईं धरी हैं तातीं लुचैयाँ उतईं कटोरो दूध मुदरी तामे की॥
उतईं बिछी हैं सेजें सुपेती पलक लेव लटकाय मुदरी तामे की।
खेल-खाल कें घरै जो आईं सासो ब्यारी देव मुदरी तामे की।
उतईं धरे हैं औरा-कौरा उतईं तिबासी दार मुदरी तामे की।
जेय-जूँठ के अचन्न लागी सासू बिछोना देव मुदरी तामे की।
उतईं धरे हैं उदरा-गुदरा खटिया लेव लटकाय मुदरी तामे की।

इस गीत में एक लड़की ने बचपन के अपनी स्नेहमयी जननी के स्नेहपूर्ण व्यवहार की ससुराल के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से तुलना की है।

४

सुनिये, एक लड़की उल्लासमय स्वर से हरजू के गीत गा रही है:—

उठो मोरे हरजू भये भुनसारे।
गौअन के पट खोलो सकारें।

उठके कन्हैया प्यारे गैयाँ दोहीं।
झपट राधिका दुहनी दीनी।
काय की दातुन काय को लोटा।
काय को नीर भर ल्याईं जसोदा।
अद्याझारे की दातुन सोने के लोटा।
जमना जल भर ल्याईं जसोदा।

(गायिका—लेखक की पत्नी)

नौरता

बुन्देलखंड में किशोरी बालिकाएँ कुँआर के महीने में नवरात्रि के समय नौरता नामक एक अत्यन्त सरल तथा धार्मिक भावनापूर्ण खेल खेलती हैं। नौरता शब्द नवरात्रि का बोधक है। खेद है कि नई सभ्यता के प्रसार से ये प्राचीन सांस्कृतिक-प्रेरणादायक खेल दिन पर दिन अस्तप्राय होते जा रहे हैं। मैं अपने बचपन में देखा करता था कि नवरात्रि के प्रारम्भ में पुरा-पड़ोस की लड़कियाँ प्रतिवर्ष इस खेल को कितनी उमंग के साथ खेला करती थीं। उनके इस खेल से नौ दिन तक मुहल्ले में बड़ी चहल-पहल बनी रहती थी और सर्वत्र एक नवजीवन का संचार होते देखा जाता था। पचास वर्ष के भीतर यह स्थिति इतनी बदल गई है कि जहाँ प्रति वर्ष यह खेल सर्वत्र अपूर्व उत्साह के साथ खेला जाता था, लड़कियों के समवयस्क भाई उन्हें सहयोग देते थे और माता-पिता रुपया-पैसा देकर उनको उत्साहित करते थे, वहाँ अब अनेक जगह बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के सिवा नई लड़कियाँ इस खेल का नाम तक नहीं जानती हैं। अब लड़कियों का वह अल्हड़ आल्हादमय जीवन दिन पर दिन स्कूल की पढ़ाई तथा घर-गृहस्थी के कामों के भार से बोझिल बनता जाता है। लड़कियों में अब उस बाल-सुलभ उन्मुक्त जीवन की लहर क्वचित ही दृष्टिगोचर होती है।

नौरता कुँवारी लड़कियों का एक विशेष खेल है, जो कुँआर मास में नवरात्रि के समय मनाया जाता है। हम नहीं कह सकते, यह खेल अन्य प्रांतों में प्रचलित है या नहीं, पर बुन्देलखंड में इसका सर्वत्र प्रचार रहा है, किन्तु अब उसका अस्तित्व दिन पर दिन

घटता जाता है। किम्वदन्ती है कि सुआटा नामक एक दैत्य था जो कुँवारी कन्याओं का अपहरण किया करता था। उसके भय से त्राण पाने के लिए कन्याओं ने दुर्गादेवी की आराधना की और सम्मिलित रूप से उनका व्रत-पूजन प्रारम्भ किया। अंत को दुर्गा-देवी प्रसन्न हुईं। दैत्य मारा गया। तभी से यह आराधना लड़कियों में नौरता के रूप में चली आ रही है।

कुँआर में नवरात्रि प्रारम्भ होने के कई दिन पहले से लड़कियाँ नौरता की तैयारी प्रारम्भ कर देती हैं। किसी एक घर या बड़ी-सी दालान में नौरता बनाती हैं। एक मिट्टी का चबूतरा बनाया जाता है जिसमें नीचे हाथ-पाँव जोड़कर दैत्य का रूप दिया जाता है। फिर दीवाल के सहारे चबूतरे के पीछे पत्थर-मिट्टी से पर्वत का आकार बनाती हैं। उसके दोनों ओर सूर्य-चन्द्र बनाये जाते हैं। पर्वत के नीचे दो पकी परियाँ गाड़कर दुग्धकुंड बनाये जाते हैं, जिसमें खेल के समय दूध भर दिया जाता है और उसमें दूबा डाल दी जाती है। पर्वत-शिखर को रंग-बिरंगे कंकड़-पत्थरों तथा कई रंग की मिट्टी से सुसज्जित करती हैं। कुम्हड़ा-तुरैया के फूल उस पर चढ़ा देती हैं। नदी की रेत में मिलनेवाली सफेद सीप तथा शंखियाँ बीनकर उन्हें महीन पीसकर कटोरियों में रख लेती हैं जिससे उत्तम सफेद चमकदार चूर्ण तैयार हो जाता है। ईंट तथा लाल खपरा पीसकर लाल रंग का चूर्ण तैयार कर लिया जाता है। इन दोनों चूर्णों से नित्य नौरता के आसपास तथा उसके सामनेवाली गली में बड़ी चतुराई और सुन्दरता के साथ चौक पूरे जाते हैं। फूल रखने के लिए बाँस के छिटन्ना बनवा लिये जाते हैं। नौरता की जगह लीप-पोतकर उज्ज्वल बना ली जाती है। यह तैयारी प्रतिपदा के पहले कर ली जाती है।

कुँआर शुक्ल प्रतिपदा के दिन सुबह बहुत तड़के सब लड़कियाँ उठती हैं और फूल तोड़कर छिटन्ना सजाने में लग जाती हैं। छिटन्ने

में फूल बाहर की ओर और डंठल भीतर को इस क्रम से गोलाकार सजा कर छिटन्ने पर फूलों की राशि सजा दी जाती है। ये छिटन्ने नौरता के पास रखकर सब लड़कियाँ गीत गाती हुई नदी को स्नान करने जाती हैं। स्नान के बाद कुम्हार के घर जाकर महादेव-पारवती की मिट्टी की मूर्ति लाती हैं और उन्हें चबूतरे पर बने पर्वत पर बिठा देती हैं।

अब पूजन प्रारम्भ होता है। सब लड़कियों में जो लड़की बड़ी और चतुर होती है वह दुग्धकुंड में से दूब भिगोकर बारी-बारी से प्रत्येक लड़की का नाम लेकर उस पर दूध छिड़कती है, मानो वह इस क्रिया द्वारा उसे खेल में वरण करती है। इसके पश्चात् कॉंई डाली जाती हैं। एक शाखा-प्रशाखा वाली पतली छड़ी में फूल लगाकर उसे अपने-अपने हाथ में ले घुमाती हुई गीत गाती हैं :—

अपनी गौर की झाँईं देखों काहौ पहिरें देखों।
कान तरुकला देखों, नाक नथुनियाँ देखों।
हाथ ककनवाँ देखों, पाँव पैजनियाँ देखों।
पराई गौर की झाँईं देखों काहो पहिरें देखों।
नाक नकटी देखों, कान बूँची देखों।
पाँव पोलू देखों, धमक चलू देखों।

उक्त गीत गाकर सब लड़कियाँ अपने-अपने हाथ की काँईं—वह फूल लगी छड़ी नौरते पर चढ़ा देती हैं। पूजन के साथ-साथ गीत में परिहास भी चलता जाता है। "पराई गौर" की कल्पना, नाक नकटी, कान बूची के रूप में की जाती है। यह काँईं डालना देवी के ध्यान और आवाहन का रूप जान पड़ता है। इसके पश्चात् सभी लड़कियाँ दोनों हाथों से दो-दो फूल उठा लेती हैं और फूलों को दूध में भिगो-भिगोकर

नौरता पर छिड़कती हुई गाती हैं। बारी-बारी से प्रत्येक लड़की का नाम लेकर गीत गाया जाता है।

अमुक बेटी ने रातो अन्हाव तो रातो अन्हैयो बेटी नौ दिना।
नारे सुआटा।
दस दिन करों सिंगार दसय दसैरो भैया जीतियो नारे सुआटा।

इस प्रकार दुग्धाञ्जलि प्रदान करने के पश्चात् लड़कियाँ अपने-अपने फूलों के छिटन्ने सामने रखकर गौरी को फूल चढ़ाने बैठती हैं। वे किसी एक जाति के फूल अपने-अपने हाथ में ले लेती हैं। फिर सब मिलकर गाती हैं:—

मोरी गौरा माँगे धतूरे के बन्ना,
सो कहाँ पाँहों रे लाल।
मोरे भैया भतीजे,
हाटे गये हैं,
पाटे गये हैं,
कारी ले कुंजल,
चौक बसन्तो,
ले मोरी गौरा, लेव महादेव,
जो तुम माँगो सोई चढ़ैहों।

इस प्रकार बारी-बारी से सभी पुष्पों के नाम लेकर फूल चढ़ाये जाते हैं। पूजन के पश्चात् लड़कियाँ नौरता के पास बैठकर अनेकों गीत गाती हैं। उनमें कहीं बेटी की बिदा का वर्णन, कहीं भाई के बहन को लिवाने जाने का मार्मिक उल्लेख और कहीं वात्सल्य-रस की अनुपम छटा दिखाई देती है। लड़कियों के कंठ से निकले हुए ये गीत बहुत मधुर और हृदय-स्पर्शी होते हैं।

नीचे के गीत में बाल-सुलभ चंचलता तथा हठ का कैसा सुन्दर वर्णन किया गया है :—

तिल के फूल तिली के दाने।
चंदा ऊँगे बड़े भुनसारें।
ऊँगन न होय बारो चंदा।
हम घर होंय लिपना पुतना।
सास न होय दैहे गरियाँ।
ननद न होय कोसे बिरना।
माई को कहो न करिहों।
बाबुल को कहो न करिहों।
पानी की खेप न धरिहों।
गोबर की हेल न धरिहों।
चकिया को डंडा न पकरिहों।
तबा पै कुचैया न धरिहों।
बासी को कौर न दैहों।
ताती होय सो लप-लप खैहों।

(गायिका—हीराबाई, देवरी)

बालिकाओं के कल्पना-जगत् के इस गीत में सबेरे समय सूर्य के स्थान पर यदि चन्द्रमा का उदय होता है तो यह असंगति क्षम्य है। इस गीत में एक बालिका कहती है—"मेरे घर पर सूर्योदय होने से पहले ही लिपना-पुतना हो जाता है। यहाँ सास तो है नहीं, जो मुझे गालियाँ देंगी, ननदै भी नहीं है जो मेरे भाई को कोसेगी। यहाँ तो मैं स्वतन्त्र हूँ। जो मन में आयेगा वही करूँगी। माँ का कहना नहीं मानूंगी। पिता की आज्ञा न मानूंगी। पानी नहीं भरूँगी। गोबर नहीं उठाऊँगी।

चक्की नहीं चलाऊँगी। तवे पर रोटी न डालूंगी। मतलब यह कि घर का कोई काम न करूँगी। माँ यदि बासी रोटी खाने को देगी तो एक कौर भी न खाऊँगी पर यदि गरम रोटी होगी तो लप-लप करके खा जाऊँगी।"

इस बाल अल्हड़ता का उत्तर माँ अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर से देती है :—

खेल लो बेटी खेल लो, भाई-बाबुल के राज।
जब दुर जैहो बेटी सासरें, सास न खेलन देय।
रात पिसावे पीसनो, दिवस गुब्बर की हेल।
दूरा के देसाँ दई हैं गौरा बेटी दई हैं सबई बेटी।
को बेटी तोहि लिवावन जैहे, बुलावन जैहे।

माँ अपने वात्सल्य का परिचय देती हुई कहती है—"बेटी, माँ-बाप के राज्य में खेल लो—खूब जी भरकर खेल लो। ससुराल जाने पर तुम्हारी सास तुम्हें न खेलने देगी। वह रात में तुमसे चक्की पिसवायेगी और दिन में गोबर की हेल उठवावेगी। मेरी गौरा बेटी दूर देश में ब्याही गई है—सभी बेटियाँ दूर देश ब्याही गई हैं। भला यह तो बता, तुझे लिवाने कौन जायगा?"

मोरी पीठ के भैया सूरजमल भैया चन्दामल।
जे दोऊ भैया, चार भतीजे लिवावन जैहें बुलावन जैहें।
सिर गोला पाग सँवारत जैहें, पियरे पट पहनावत जैहें।
लीलो सी घोड़ी कुंदावत जैहें, लाल छड़ी चमकावत जैहें।
बन की चिरैंयाँ चुगावत जैहें, अन्ध कुबल उघराउत जैहें।
फूटे ताल बँधाउत जैहें, उखटे बाग लगाउत जैहें।
नंगी डुकरियाँ उढ़ावत जैहें, भूखीं डुकरियाँ जियाउत जैहें।
कुँवारी सी कन्या विवाहत जैहें, ब्याही सी बिटियाँ चलाउत जैहें।

बेटी उत्तर देती है—"मेरे दो भाई और चार भतीजे हैं, वे मुझे लिवाने जायेंगे—बुलाने जायेंगे। जानती हो किस प्रकार? घोड़ों पर सवार होकर, हाथ में पीली छड़ी लेकर, वन की चिड़ियों को चुगाते हुए, जलहीन कुओं को उघराते हुए, फूटे तालों को बँधाते हुए, उजड़े बागों को लगाते हुए, दीन-दुखियों को भोजन-वस्त्र बाँटते हुए, कुँवारी कन्याओं के विवाह तथा विवाहित लड़कियों के चौक-चलाव करते हुए।"

एक बेटी चुनरी रँगाने के लिए मचलती है। वह अपने पिता से कहती है:—

ऊँची डगर की पीपरी नारे सुआटा,
जिन तरें लगे हैं बजार।
बिरजी गौरा बेटी वाय सें नारे सुआटा,
राजा बाबुल चुनरी रँगाओ।

वह कैसी चुनरी रँगाना चाहती है?

ढिग-ढिग लिखियो मोरो मायको नारे सुआटा।
अँचरन माई के बोल।
माई बैठी मँझघरा नारे सुआटा,
बाबुल पौर दुआर।

वह चाहती है कि उसकी चूनरी में ढिगों पर मायके के दृश्य अंकित किये जावें, अंचल पर माता के सिखावन के बोल लिखे जावें, माता बीच के मजघरा में बैठी तथा पिता पौर के द्वार पर बैठे अंकित किये जावें।

कुछ समय के पश्चात् वह ससुराल चली जाती है और कई वर्षों तक मायके नहीं आती। उसके भाई उसे लेने जाते हैं। मंजिल-दर-मंजिल

चले जा रहे हैं। वे पहली बार बहिन की ससुराल को जा रहे हैं। मार्ग तथा बहिन का घर उनका देखा नहीं है। अतः वे पूछते-पूछते जा रहे हैं। वे उसी गाँव में पहुँच जाते हैं। गाँव के बाहर एक कुएँ पर कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही हैं। आगन्तुकों को देखकर स्त्रियाँ हास-परिहास करने लगती हैं। कोई ननद इन्हें अपनी भावज का भाई बताती है तो कोई भावज उन्हें अपना ननदोई। एक प्रौढ़ा स्त्री एक वधू से कहती है—"बहू, मुझे तो ये पथिक तुम्हारे भाई से प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनका रंग-रूप तेरे रंग-रूप से मिलता है। जरा देख तो सही।" इतना सुनते ही उस वधू के नेत्र अपने भाइयों की खोज में उठते हैं:—

चौकन चौकी चौखुटी नारे सुआटा,
चौकी के चारऊँ खूँट।
चौकन बैठे भैया डेढ़ सौ नारे सुआटा,
तिन में भैया चंदा सूरज मोरे कौन?

इन पथिकों को देखकर वह बालिका वधू भ्रमित सी हो जाती है। भाइयों को बहुत दिन से नहीं देखा, इससे ठीक पहिचान करने में वह हिचकती है। वह निश्चय करने के लिए कहती है:—

लाल पाग कारी ढाल के नारे सुआटा,
लीली घुड़ल असवार।
चन्दा सूरज दोउ भैया ठाढ़े नारे सुआटा,
पकरें लौंग की डार।
लीली जो बाँधो भैया लौंग सें नारे सुआटा,
घरियक घामो बिलमाव।

"भैया, आप नीली घोड़ी को लौंग की डाल से बाँध दो और घड़ी भर बैठकर विश्राम कर लो, जिससे यह कड़ी धूप निकल जाय।" बालिका के मुख से भैया शब्द सुनकर पथिक गद्गद् हो जाते हैं। बहिन की याद उन्हें विकल कर देती है। वे कहते हैं:—

हम कैसे घामों बिलमाइये नारे सुआटा।
जिन की बहन परदेश।
घामों बिलमावें मोरे बाबुल नारे सुआटा,
जिनने दई परदेश।

"हम कैसे घाम बिलमा सकते हैं जिन की बहन परदेश में है। विश्राम तो हमारे पिताजी करें जिन्होंने बहन को दूर, परदेश में दिया और आज तक खबर नहीं ली। हम चन्दा सूरज दोनों भाई तो बहन के घर जाकर ही विश्राम करेंगे।" चन्दा सूरज नाम सुनकर बहन फूल की तरह खिल उठी। वह दौड़कर उनसे मिली और उन्हें घर ले गई।

प्रभात समय की सुहावनी बेला में बालिकाओं के सुमधुर कण्ठ से निकले हुए इस करुण गीत को सुनकर किस सहृदय व्यक्ति की आँखों से आँसू न बह निकलेंगे।

बालिकाएँ नित्य नौ दिन तक इसी प्रकार नौरता की पूजा करती हैं। रात्रि के समय भी उनका कुछ कार्यक्रम चलता है। संध्या होते ही सब लड़कियाँ नौरता-स्थल पर इकट्ठी होती हैं। इस समय खेल-कूद होता है। मैदान में एक मटका औंधाकर रख देती हैं। उस पर बाँस के छिटन्ना एक के ऊपर एक रख दिये जाते हैं। अब प्रत्येक लड़की बारी-बारी से कुछ दूरी से दौड़कर इस मटके को लाँघती है। प्रत्येक लड़की को नौ बार मटका लाँघना पड़ता है। लाँघते समय जितनी बार जिस लड़की से मटके की तली पर रखे हुए छिटन्ने नीचे गिर पड़ें

उतनी ही खोंची अनाज उस लड़की से दंड-स्वरूप लिया जाता है। इस तरह नौ दिन में नौरता फंड के लिए काफी अनाज इकट्ठा हो जाता है।

कुँआर शुक्ल नवमी खेल का अन्तिम दिवस होता है। नवमी के दिन नौरता से नदी तक के समस्त रास्ते पर चौक पूरा जाता है। नवमी को पूजा के बाद सब लड़कियाँ गौरा महादेव की मूर्ति सिराने संध्या समय नदी जाती हैं। लौटती बार पीछे नदी की ओर नहीं देखतीं।

रात्रि होते ही 'झँझरी' फिराई जाती है। एक घड़े के ऊपरी भाग में चारों ओर अनेकों छिद्र कर दिये जाते हैं। आधे घड़े तक राख भर दी जाती है और उस राख पर मीठे तेल का एक दीपक जलाकर रख देते हैं। छिद्रों से उसका प्रकाश चारों ओर निकलता है। यह झँझरी कहलाती है। एक लड़की उसे अपने सिर पर रखकर आगे-आगे चलती है, पीछे सब लड़के-लड़कियाँ। यह झँझरी खेल में सम्मिलित प्रत्येक लड़की के घर तो जाती ही है पर इसे मुहल्ले के अन्य प्रतिष्ठित घरों में भी ले जाया जाता है। जिसके घर झँझरी पहुँचती है, वह अपनी श्रद्धा के अनुसार रुपया, दो रुपया, आठ आने देता है। इस तरह घंटे-दो घंटे झँझरी फिराने से बहुत-कुछ चंदा इकट्ठा हो जाता है। प्रत्येक घर के सामने जब झँझरी पहुँचती है तो बारम्बार यही गीत गाया जाता है:—

पूँछत-पूँछत आये हैं नारे सुआटा कौन बबुलजू की पौर।
पौरन बैठो पौरिया नारे सुआटा खिरकन बैठो छड़ीदार।
तुम जिन जानो बाबुल माँगने नारे सुआटा हमरो दओ गिर जाय।
दाता के घर बाढ़ियो नारे सुआटा माई सूम के घर में चोर।
पूँछत-पूँछत आये हैं नारे सुआटा कौन हिमांचल की पौर।
निकरो दुलैया रानी बाहरे नारे सुआटा बिटियन अच्छत देव।
हम कैसें निकरें वैया बाहरे नारे सुआटा ओलियों झडूले पूत।

तुम जिन जानो भौजी माँगने नारे सुआटा घर-घर देत अशीस।
पत जो पारो भौजी पालने नारे सुआटा बिटियन अच्छत देव।
लै अच्छत भौजी निग चली नारे सुआटा चँदने रिपटो पाँव।
चँदने रिपटीं भौजी गिर परीं नारे सुआटा अच्छत गए बगराय।
जितने अच्छत भौजी भौं परे नारे सुआटा तितने दुलैया तोरें पूत।
पूतन-पूतन भौजी घर भरै नारे सुआटा बहुअन भरै चितसार।

(गायिका—हीराबाई, देवरी)

दशमी को रात्रि के समय सब लड़कियाँ नौरता पर भोजन करती हैं। खेल में शामिल रहनेवाली लड़कियाँ तथा उनके छोटे भाई-बहिन और पुरा-पड़ोस के समस्त बालक-बालिकाएँ निमंत्रित की जाती हैं। खौंची द्वारा एकत्रित अनाज बेचकर मिला हुआ पैसा तथा झँझरी फिराने से मिला हुआ चन्दा इस भोज में खर्च किया जाता है। पूरी-तरकारी बनाई जाती है या बाजार से मिठाई मँगाई जाती हैं। यह भोज भी हास-परिहास के साथ सम्पन्न किया जाता है। पत्तलें परोसी जा चुकने पर लड़कियाँ नीचे लिखे पद कुछ समय तक कहती जाती हैं और कौर मुँह में देती जाती हैं:—

अपनी गौर को पेट पिरानो सारे लड़ुआ हप्प।
अपनी गौर कें लरका भव सारे लड़ुआ हप्प।
पराई गौर को पेट पिरानो सारे लड़ुआ हप्प।
पराई गौर कें बिटिया भई सारे लड़ुआ हप्प।

भोज-समाप्ति के साथ-साथ नौरता का खेल भी समाप्त हो जाता है। विवाह होने के पश्चात् प्रत्येक लड़की को उत्थापन करना होता है जिसे नौरता उजाना कहते हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार के गीत

बुन्देलखंड में यज्ञोपवीत संस्कार को 'बरुआ' कहते हैं। यह शब्द बटुक से बना है जो बाल-ब्रह्मचारी का बोधक है। बरुआ के समय गाया जानेवाला एक गीत नीचे लिखा जाता है :—

तीन तगा को डोरा री, दमरी कौ सूत ए भैया।
तीन तगा को जनवा री कैसो मजबूत सुन भैया।
पैले में विश्नू दूजे बिरमा तीजो सूत शंकर अवधूत सुन भैया।
पैले तगा में ओंकार है दूजे में अगन सबूत ए भैया।
तीजे तगा में नाग-बास है चंद बिराजें चौथे सूत ए भैया।
पाँचें सूत में पितर बिराजें प्रजापती हैं छटवें सूत ए भैया।
सातव तंत अस्थान पवन को सूरज को है आठों सूत ए भैया।
नवें तंत में विश्वे देवा हीरा कातें कन्या सूत ए भैया।

बालक जब ब्रह्मचारी बनकर भिक्षा माँगने के लिए निकलता है, उस समय स्त्रियाँ गीत गाती हैं :—

कहाँना सें बरुआ चले यारो ठाढ़े कहँना दोर।
काशी सें बरुआ चले यारो ठाड़े अजुल दरबार।
भीखो दे आजी भीखो दे, तोरो बरुआ उपासो हो।
भीखो दे आजी भीखो दे, तोरो बरुआ रिसानो जाय।

(गायिका—गौराबाई मिसराम, देवरी)

यह गीत आजी, माई, बहिन, फुआ अदि नाम लगाकर, जो भीख डालने आती है, गाया जाता है ।

वैवाहिक गीत

विवाह सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह द्वारा ही संसार की स्थिति रहती है और उसीके द्वारा समस्त सांसारिक सम्बन्धों की सृष्टि होती है। इसीलिए हिन्दू संस्कृति में विवाह को बहुत महत्व दिया गया है। विवाह में वाग्दान से लेकर अखीर कंकन छोड़ने तक के समस्त रीति-रिवाजों के पृथक्-पृथक् गीत यहाँ प्रचलित हैं। इन वैवाहिक गीतों में बनरा-बनरी, गारीं, बुन्देला, रघपत आदि मुख्य हैं। वैसे तो प्रत्येक नेग तथा अवसर के पृथक् गीत होते ही हैं और वे समय-समय पर गाये जाते हैं। ये गीत बहुत मनोहारी तथा भावपूर्ण रहते हैं। यह सच है कि इन गीतों में छंदोभंग तथा व्याकरण की अनेक त्रुटियाँ हो सकती हैं, लेकिन उनके भीतर भावों का इतना प्रखर सौन्दर्य संचित रहता है, उनमें इतना प्रबल आकर्षण और प्राणवान मर्मवेदना घनीभूत रहती है कि छंदोभंग जैसी बात गौण पड़ जाती है। नीचे क्रम से वैवाहिक गीत दिये जाते हैं।

लगुन के गीत

किसी लड़के वाले के घर कन्या पक्ष से लगुन आई है। लगुन पढ़ने की तैयारी की जा रही है। दोनों पक्ष के लोग आँगन में समवेत हो गए हैं। लड़का शृंगार करके पटली पर बैठाया जा चुका है। स्त्रियों में एक अपूर्व उत्साह की लहर दौड़ गई है। वे गाने लगती हैं :—

सो आज मोरे रामजू खों लगुन चढ़त है।
लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है ॥

कानन कुंडल मोरे रामजू खों सोहें ।
सो गालन बिच मुतियन लर[1] ररकत[2] है ।।
केशर खौर मोरे रामजू खों सोहे ।
सो गर बिच[3] गोप जंजीर लसत है ।।
कंकन चूरा मोरे रामजू खों सोहे ।
सो हातन बिच गजरा दरसत है ।।
रामजू के दरशन खों जियरा ललचत है ।
आज मोरे रामजू खों लगुन चढ़त है ।।

लगुन चढ़ चुकी है। लगुन में आई हुई चीजों को देखकर स्त्रियाँ गाती हैं :—

बना की ससुरारों से आये सैरों[4] के जोड़ा री ।
बाँधो बाँधो रे हजारी दूला क्या छब लागे री ।
बना की ससुरारों से आये चंदन के मूठा ।
गारो गारो रे हजारी दूला क्या छब लागे रे ।

(गायिका—हीराबाई, देवरी)

विवाह के लिए विचार-विमर्श

कन्या के विवाह का विचार-विमर्श चल रहा है। कन्या कहाँ दी जाना चाहिए, इस पर बहस छिड़ रही है। कोई कहीं की राय देता है

---

१ लर = लड़ी । २ ररकत = लटकती । ३ गर बिच = गले के मध्य ।
४ सैरों = साफा ।

और कोई कहीं की। लड़की की माँ यह जानने में असमर्थ है कि कौन घर-वर श्रेष्ठ रहेगा, इसलिए वह अपनी राय—बेटी कैसी जगह देना चाहिए, निम्न गीत द्वारा व्यक्त करती है:—

मोरी लाड़ी बनरी नादान आजुल जी सों अरज करै।
मोरी ऐसे घरै दियो महाराज जहाँ बेटी राज करै।
जहाँ बम्मन तपत रसोई कहर दोई पानी भरैं।
मोरी झूलों की झूलन हारीं कटोरन दूध पियें।
मोरी रुपयों की परखन हारी मुहरों के मोल करैं।
मोरी छुज्जे की पौढ़न हारी झरोखन बाव ढुरैं।

(गायिका—गौराबाई, देवरी)

माँ कहती है—"मेरी बनरी बहुत लड़ैती है। उसे ऐसे घर देना, जहाँ वह राज करे। सब प्रकार के सुख उसे उपलब्ध हों। जहाँ रसोई बनानेवाला रसोइया तथा पानी भरनेवाले कहार लगे हों। मेरी बेटी झूलों की झूलनेवाली है, कटोरों से दूध पीती रही है। छज्जे पर बैठने वाली तथा झरोखों से हवा लेनेवाली है। उसके लिए ऐसा घर तलाशना जहाँ उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

बनरा-बनरी

बुन्देलखंड में वर को बनरा और दुलहिन को बनरी या लड़नदे कहते हैं। ब्याह के समय लड़के वाले के घर बनरा और लड़की वाले के घर बनरी गाई जाती हैं। ये बनरा-बनरी भाँवरों के पहले कभी भी गाये जा सकते हैं, भाँवरों के पश्चात् नहीं। किसी लड़की वाले के घर नुकायने

(अनाज चुनने) के लिए स्त्रियाँ एकत्रित हुई हैं। वे गेहूँ-चावल चुन रही हैं और गीत गाती जाती हैं:—

ओरन खोरन फिरें बेटी लड़नदे कौन बबुलजू के बाग भले जू।
हरी हरी दूबा बेटी फूली है चमेली बेई बबुलजू के बाग भले जू।
बीन बीन फुलवा बेटी भर लई डलियाँ—
धर लई घर की गैल भले जू।
माँय से आ गए रघपत दूल्हा जे फुल हमें दँय जाव भले जू।
जे फुलवा हमरे बाबुल मँगाये पूजत गौरि गनेश भले जू।
जे फुलवा अपने बाबुल खों देहों साके के रचे जिन ब्याव भले जू।
माथे की बेंदी बनरी हमई ल्याहें तब हुइये साके के ब्याव भले जू।

इस गीत में बनरा-बनरी की रास्ते में अकस्मात भेंट तथा छेड़-छाड़ हो जाती है। बनरी अपने बाबुल की बगिया से फूल तोड़कर ला रही थी, बीच में दूल्हा राजा मिल गए तो कहने लगे—"ये फूल मुझे दिये जाओ।" बनरी जवाब देती है—"ये फूल मैं अपने पिता के लिए तोड़कर लाई हूँ। किसी दूसरे को नहीं दे सकती। वे साके के साथ मेरे ब्याह की तैयारी कर रहे हैं।" इस पर दूल्हा जवाब देता है—"माथे का बेंदी फूल तो मैं ही लाऊँगा, तभी साके का ब्याह होगा न ?" बुन्देलखंड में किसी-किसी जाति में वेंदी फूल और किसी-किसी के यहाँ कंठी (मंगल-सूत्र) के बिना भाँवर नहीं पड़ती है। वह वर-पक्ष से आता है। इस गीत में यही संकेत किया गया है। एक गीत समाप्त होने पर दूसरा उठाया जाता है:—

रुनक-झुनक बेटी मंड़ल डोलें आजुल लये हैं उठाय।
कै मोरी बेटी तुम साँचे की ढारीं कै गढ़ी हैं चतुर सुनार।
नै आजुल मैं साँचे की ढारी नै गढ़ी चतुर सुनार।
माता की कुखियाँ जनम लये हैं रूप दये करतार।

बेटी लड़नदे पैजनों का रुनझुन शब्द करती हुई आँगन में डोल रही थी। उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर आजा मुग्ध हो गया। उसने उसे गोदी में उठा लिया। आजा पूछता है—"बेटी, तुम साँचे की ढली हो या तुम्हें किसी चतुर सुनार ने गढ़ा है ? ऐसा रूप तो मैंने कहीं नहीं देखा।" बेटी उत्तर देती है—"न तो मैं साँचे की ढली हूँ और न मुझे सुनार ने गढ़ा है। मैं अपनी माता की कोख से पैदा हुई हूँ और रूप विधाता ने दिया है।"

अब किसी लड़के वाले के घर की चहल-पहल भी देखिए। वहाँ गाया जा रहा है:—

मोरे राम लखन से बनरा आली कौने बिलमा लये री।
मोरो पूनो कैसो चंदा बना सब जग उजयारो री।
उनके आजुल ने बिलमा लये आजी कंठ लगा लये री।
उनके काका ने बिलमा लये काकी कंठ लगा लये री।
उनकी जीजी ने बिलमा लये जीजा कंठ लगा लये री।

इसी तरह बीरन, बाबुल, फुआ, फूफा, आदि नाम जोड़कर गीत आगे बढ़ता जाता है।

कोई दूल्हा सज बज कर तैयार हुआ है। उसकी रूप-सज्जा को देखकर स्त्रियाँ आनंद विभोर हो गाने लगती हैं:—

पलट देखो अँगना में रँग बरसत है।
रँग बरसत है अबीर उड़त है।
पलट देखो अँगना में रँग बरसत है।
माथे हो सेरो बाँधो राजा बनरे।

कलियों खों देख मोरो जिया ललचत है।
पलट देखो अँगना में रँग बरसत है।

(गायिका—गौरा बाई मिसरान, देवरी)

हल्दी-तेल चढ़ाने के गीत

बरात के पहले वर तथा कन्या को तेल-हल्दी या चंदन चढ़ाने का दस्तूर होता है। चौक पूर कर पटली पर वर या कन्या बैठाई जाती है। बहिन, भौजाई तथा पाँच-सात कन्याएँ तेल-हल्दी चढ़ाती हैं। एक कटोरे में तिली के तेल में हल्दी मिला ली जाती है। उसमें दूब डाल दी जाती है। फिर लड़के या लड़की के पाँव, घुटने, कंधे और माथे पर तेल लगाया जाता है। स्त्रियाँ गाने लगती हैं:—

कौना ने तेलो चढ़ाव को राये बेंहदुलिया।
बहनी ने तेलो चढ़ाव जीजा राये बेंहदुलिया।
चढ़ गव तेल फुलेल छुटक रहीं पाँखुरियाँ।
को ल्याव तेल फुलेल को ल्याव पाँखुरियाँ।
तेलन ल्याई तेल फुलेल मलिन ल्याई पाँखुरियाँ।
भावी ने तेलो चढ़ाव बीरन राये बेंहदुलिया।

तेल चढ़ाने का काम अभी पूरा नहीं हुआ है। बारी-बारी से तेल चढ़ाया जा रहा है। जब तक तेल चढ़े, तब तक गीत गाना अनिवार्य है, इसलिये तुरंत ही दूसरा गीत उठा दिया जाता है:—

सो आज मोरे रामजू खों तेलो चढ़त है।
तेलो चढ़त है फुलेल चढ़त है।

सोने कटोरा में तेलो भरायो।
सो हरदी मिला कें कैसो झलकत है।
सो आज मोरे रामजू खों तेलो चढ़त है।
कुँवारिन ने मिल तेलो चढ़ायो।
सो नारिन मंगल गीत मढ़त हैं।

(गायिका—हीराबाई, खैरी)

मातृका पूजन, बाबू पूजन तथा देवी देवताओं के निमंत्रण के गीत

घर में विवाह रूपी महायज्ञानुष्ठान होनेवाला है। इसलिए इष्ट-देव, कुलदेव तथा ग्राम देवों की पूजा–अर्चना करना तथा उन्हें निमंत्रण देना आवश्यक समझा जाता है। उनकी सहायता के बिना यह मंगल कार्य निर्विघ्न समाप्त नहीं हो सकता है। मातृका पूजन तथा बाबू-पूजन के पश्चात् स्त्रियाँ देवताओं को निमंत्रण देती हैं। निमंत्रण के गीत देखिए:—

सरग नसेनी पाट की यारो जे चढ़ नेवतो देंय।
तुम मोरे नेवते गनेश देव तुम मोरें आइयो।
तुम मोरे नेवते महादेव पारवती तुम मोरें आइयो।
तुम मोरे नेवते पवनसुत तुम मोरें आइयो।

इस प्रकार अपने इष्टदेव, कुलदेव तथा हरसिद्धि, हरदौल बरमदेव आदि देवताओं का नाम लेकर न्यौता दिया जाता है। अंत में भूले–बिसरे कहकर सबको आमंत्रित किया जाता है। देवताओं के निवास की

कल्पना ऊपर—स्वर्ग लोक में की जाती है। इसलिये स्त्रियाँ पाटकी सरग-नसेनी पर चढ़कर देवताओं को न्यौता देने की कल्पना करती हैं, जिससे उनका न्यौता बेरोक-टोक उन तक पहुँच जाय।

बुन्देलखंड में हरदौल लाला की मानता विशेष रूप से की जाती है। हरदौल अर्थात् दीवान हरदेवसिंह जी ओरछा के महाराज जुझारसिंह के छोटे भाई थे। आदर्श देवर लक्ष्मण के समान ही हरदौल भी अपनी भाभी का माता के समान आदर करते थे। महाराज जुझारसिंह मुगल दरबार में अधिकतर रहा करते थे। चुगलखोरों ने उनके कान पर यह बात पहुँचाई कि देवर-भाभी का प्रेम कलुषित है। जुझारसिंह जी ओरछा आ पहुँचे और उन्होंने महारानी को आज्ञा दी कि यदि तुम सती हो तो हरदौल को भोजन में विष दो। धर्म-संकट में पड़कर रानी ने विष देना स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन के समान मातृस्वरूपा भाभी के हाथों से भोजन पाते समय उनकी आँखों में आँसू देखकर हरदौल ने कारण पूछा। रानी ने रो-रोकर अपनी विवशता बतला दी। भाभी के सतीत्व की परीक्षा थी। हरदौल ने उस विष मिश्रित भोजन को सहर्ष खा लिया। भोजन करके हरदौल कुलदेवता रघुनाथ जी के अंतिम दर्शन करने गये और लौटकर भाभी का चरण-स्पर्श करके अमरपुर को चले गए। विष ने हरदौल को सचमुच अमर कर दिया। देश का बच्चा-बच्चा आज हरदौल की पूजा करता है। गाँव-गाँव में उनके चबूतरे बने हैं। हरदौल लाला सारे बुन्देलखंड के लाला बन गए हैं। बुन्देलखंड की सब ललनायें उन्हें अपना ही लाला समझती हैं और उनसे यही आशा करती हैं कि उन्होंने जैसी प्रीत अपनी भाभी से की थी वैसी सबसे करें और हर समय हम लोगों की आँखों के सामने रहें।

नजरियों के सामने तुम हरदम लाला रहियो।
तुमने करी भावी सें प्रीतो जैसी सब दुनियां की रीती।

तुमने नहीं करी अनरीती जैसी नांय निभाकें ल्याये
तैसी सदा निभैयो। नजरियों के सामने...........

प्रीत देख राजे रिस बाढ़ी, रानी मानो बात हमारी।
ऐसी चतुर रचो जिवनारी, जे देवरा प्रानों के प्यारे
तिनखों विष दे दैयो। नजरियों के सामने...........

रानी बोली होय दुखारी तुमने कैसी बात बिचारी।
मानो राजा बात हमारी कैसो मन में कपट बिचारी।
बाँह टोर पछतैयो। नजरियों के सामने...........

जब राजा ने एक न मानी तब जेवनार रचाई रानी।
आज रची जेवनार भावी ने लाला जेवन अइयो।
लाला अपने प्रान बचैयो। नजरियों के सामने......

जेलई जा विष की थारो मर गये भौजाई के लाला।
जैसी प्रीति करी भौजी से ऐसी सबै लगैयो।
बहन कुंजावती ठाड़ी रोवें वीर बुंदेला मों जो बोलो।
अपनो काज निभैयो। नजरियों के सामने...........

(गायिका—गौरा बाई मिसरान, देवरी)

कहते हैं, हरदौल की बहन कुंजावती की लड़की की शादी थी। कुंजावती को मामा के अभाव में लड़की का ब्याह करना अखरा। वह उनकी समाधि पर गई और खूब रोई। उसने मृत भाई से प्रार्थना की- "जिस तरह भी हो तुम इस विवाह में आना और विवाह-कार्य को सँभालना।" कहते हैं, विवाह के समय हरदौल प्रकट हुए। भानजी के विवाह में उन्होंने बहुत-सा द्रव्य खर्च किया, हर तरह से सहायता दी और

ववाह का सारा काम किया। स्वतः अपने हाथों से पंक्ति को परोसा। विवाह के पश्चात् वे फिर अंतर्द्धान हो गए। तब से बुन्देलखंड में यह विश्वास चला आता है कि निमंत्रण देने पर हर विवाह मे वे आते हैं और विवाह-कार्य सँभालते हैं। इसीलिए प्रत्येक विवाह में हरदौल को निमंत्रण दिया जाता है और आशा की जाती है कि विवाह-कार्य में कहीं भूल-चूक हो तो उसे सँभाल लेना। स्त्रियाँ निमंत्रण देकर गाती हैं:—

हरदौल लाला मोरी कही मान लियो हो हरदौल लाला।
कहूँ भूला परै कहूँ चूका परै तो सँभाल लियो
हो हरदौल लाला।
माथे हो सैरो हरदौल जू के सोहे, कलियों की लटकन
सँभाल लियो हो हरदौल लाला।
कानों हो कुंडल हरदौल जू के सोहें, झुमकों की लटकन
सँभाल लियो हो हरदौल लाला।

बाबू पूजा के समय स्त्रियाँ तीन दिन और दो रात के लिए— बरात आने से उसकी बिदाई के समय तक हवा, पानी, आँधी, साँप, बिच्छू और घर के लोगों की जबान आदि को कीलित करने के लिए एक प्रक्रिया करती हैं जिसे यहाँ की भाषा में बाबू मूँदना कहते हैं। एक मिट्टी के दिया में जेठे-बड़ों के बाल, मक्खी, मकड़ी का जाला आदि अनेक चीजें रखकर बेसन से बीच के चूल्हे की बाहरी ओर चिपका देती हैं। इस समय वे गाती हैं:—

तीन दिना दोइ रात बरन नोनो मूँदियो।
[1]मूँदो मूँदो जिठनियाँ की जीभ बरन ऐसो मूँदियो।

---

१ मूँदो = बंद करो।

मकरी माछी मूँदियो मूदों पगरेतन [1] की जीभ ।
बिच्छू किच्छू मूँदियो मूँदो जेठे बड़ों की जीभ ।
आँधी बैहर [2] मूँदियो मूँदो कुटम भरे की जीभ ।
तीन दिना दोइ रात बरन ऐसो मूँदियो ।

(गायिका—लेखक की पत्नी)

विवाह के समय तीन दिन, दो रात के लिए जब तक बरात कन्या पक्ष के घर ठहरती है, जिस प्रकार आँधी, पानी, आग, बिच्छू, साँप आदि प्राकृतिक तथा भौतिक उत्पातों से बचने की आवश्यकता है, उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक आवश्यकता कन्यापक्ष के स्त्री-पुरुषों की जीभ को वश में रखने की भी है। कई जगह देखा जाता है, बातों ही बातों में मामला इतना बिगड़ जाता है कि बरात लौट जाती है—विवाह रुक जाता है। इसलिए स्त्रियाँ बरात आने के एक दिन पहले प्राकृतिक तथा भौतिक उत्पातों से त्राण पाने तथा जेठे-बड़ों, और समस्त स्त्री-पुरुषों की जीभ को तीन दिन के लिए कीलित कर देती हैं।

बरात आगमन की प्रतीक्षा

ऊँचो सो चौंरा रैया माँझ मझोटें ईंगुर ढोरे हैं बान।
जे चढ़ देखें लड़गहरी के बाबुल मोरें केतक आवे बरात।
इक लख हथिया सवा लख घोड़े पैदल को आर ने पार।
इतनो जो देखो राजा बाबुल डराने अब मोरी धिया रही कुंवारि
काहे खों बाबुल थर थर काँपो काय खों जहर-विष खाव।
अपने ससुर सें बिनती करहों आधे से देहों भगाय।

---

१ पगरेतन = गृह स्वामिनी। २ बैहर = हवा।

ऊजरे हो ऊजरे रैया लोग बराती मैले से देखन हार।
देखनहारे पलट घर जैहें रैहें जे छैला बरात।

किसी लड़की वाले के घर बरात आगमन की प्रतीक्षा की जा रही है। बरात गाँव के बाहर आ चुकी है। गाँव भर में खलबली मची है। आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी बरात देखने को उत्सुक हैं। वे अपने-अपने घरों से निकलकर कोई जनवासे पर और कोई-कोई लड़की वाले के घर एकत्रित हो गये हैं। उधर बराती भी नये-नये उत्तम वस्त्र पहन कर द्वार-पूजन के आने की तैयारी कर रहे हैं। इधर दरवाजे के मैदान के मध्य एक ऊँचा लाल रंग का पुता चबूतरा है। लड़की का पिता उस चबूतरे पर चढकर देखता है कि मेरे घर आज कितनी बरात आनेवाली है। वह देखकर घबड़ा जाता है। बाप रे बाप! एक लाख हाथी, सवा लाख घोड़े! पैदल मनुष्यों का तो कोई ओर-छोर नहीं है। पिता निराश होकर सोचता है, अब मेरी लड़की कुँवारी रही। मैं इतनी बरात की सँभाल कैसे कर सकूँगा। वह थर-थर काँपता है और प्राण देने को तैयार हो जाता है। इसी समय वह लड़की, जिसका विवाह होने-वाला है, पिता के पास पहुँच जाती है। लड़की काफी वयस्क तथा समझदार मालूम पड़ती है। वह पिता को समयोचित धैर्य देती है। कहती है—"पिता जी, आप अधीर क्यों होते हैं? जहर खाकर मर जाने का विचार क्यों कर रहे हैं? यह घबराने का समय नहीं है। बरात अधिक आई है, आप इसकी चिन्ता न करें। मैं अपने ससुर से विनती करके आधी-सी बरात वापिस करवा दूंगी। फिर आपको वहाँ जितने मनुष्य दिखते हैं वे सभी बराती नहीं हैं। उनमें से जो उजले-उजले वस्त्र पहिने हैं वे बराती हैं और जो मैले वस्त्र पहिने हैं वे गाँव के दर्शक हैं। बरात लगने पर दर्शक अपने-अपने घर चले जायेंगे और ये छैला बराती ही रह जायेंगे।" बेटी की बात सुनकर पिता को धैर्य हो जाता है।

कहाँ बसाऊँ अराती बराती कहना तो घुड़ला पचास।
कहाँ बसाहो बाबुल गरय से साजन कँहना दुलहा-दमाद।
बागों बसाहों अराती बराती मेखों से घुड़ला पचास।
जनावसे बसाहों मोरे गरय से समधी मँड़वा में दुलहा-दमाद।
काहा दै समझा हो अराती बराती काहो दे घुड़ला पचास।
काहा दै समझा हो गरय से साजन काहो दे दुलहा-दमाद।
भात दै समझा हों अराती बराती दानों दे घुड़ला पचास।
दायज दै समझा हों गरय से साजन दुलही दे दुलहा-दमाद।
अचहँड़ दैहों पचहँड़ दैहों दैहों बच्छा तरें गाय।
एक न दैहों अपनी धियारी लड़नदे माई की परम अधार।
अचहँड़ छोड़े पचहँड़ छोड़े छोड़ी बच्छा तरें गाय।
एक न छोड़ों अपनी बहुवा लड़नदे जिन बिन सूनी बरात।

(गायिका—बेदवंती बाई, गौतम खेरी, पो० देवरी)

बरात छँट जाती है। अब केवल ५० घोड़े रह जाते हैं। उन सबके ठहराने और उन्हें प्रसन्न करने की विधि सोची जाती है। आखिर बरातियों को भात, घोड़ों को दाना, समधी को दायजा और दूल्हा को दुलहिन देकर सबको प्रसन्न करने की बात ठहराई जाती है। परंतु उसमें लड़की की माँ आपत्ति उठाती है। कहती है—"मैं अचहँड़ पचहँड़ दूंगी। बच्छा तरे गाय दूंगी। सब कुछ दूंगी परन्तु मैं अपनी प्राणों की आधार लड़की को न दे सकूंगी।" मातृ-हृदय की व्याकुलता इधर साकार हो उठती है। समधी उत्तर देता है—"मुझे अचहँड़ पचहँड़ नहीं चाहिए। बच्छा तरे गाय भी छोड़ दूंगा पर मैं अपनी बहू को न छोड़ सकूंगा, क्योंकि उसके बिना तो सारी बरात सूनी रह जायगी।"

चीकट चढ़ाने की बीध

बुन्देलखंड में लड़के-लड़की के विवाह के समय स्त्रियों के मायके से चीकट आती है। चीकट बरात आने के समय बरात के बाजे सुनकर चढ़ाई जाती है। लड़के का ब्याह हो तो बरात जाने के पहिले चढ़ाई जाती है। चीकट में भाई अपनी बहन-बहनोई तथा बहन की देवरानी जिठानी आदि के लिए वस्त्र लाकर भेंट करता है। नीचे चीकट का एक गीत दिया जाता है:—

उठब नै हो मोरी साँवल गोरी तुम घर बीध [1]उलायती [2]।
जा बीध रे साईं हमें नै सुहावे हमारे बिरन परदेश में।
तुम्हारे बिरन खों पतियाँ पठैहों गोरीधन बीर बुलाइहों।
चिठियन साईं बीरो नईं आवें संदेशे भौजी कैसे आइहैं।
उठै नै मोरे बेटा अमुक राये जाओ लला ममयाउरें [3]।
मामुल खों बेटा नेवतो दियो माईं लुवाय घर आइयो।

किसी व्यक्ति के घर लड़के का ब्याह नजदीक आ गया है। वह अपनी सोती हुई पत्नी को जगाकर कहता है—"हे मेरी सांवली प्रियतमा, उठो, तुम्हारे घर विवाह नजदीक आ गया है। अब सोने से काम न चलेगा।" स्त्री कहती है—"प्राणेश्वर, यह विवाह मुझे अच्छा नहीं लगा क्योंकि मेरे भाई परदेश में हैं।" पति उत्तर देता है—"मैं तुम्हारे भाई को बुलाने के लिये चिट्ठी भेजूंगा। उन्हें बुलवाऊँगा।" स्त्री जवाब देती है—"चिट्ठियों से वे कैसे आयेंगे? संदेशा भेज देने से क्या मेरी भौजाई

१ बीध = विवाह। २ उलायती = नजदीक, समीप। ३ ममयाउरें = मामा के घर।

आ जायगी ?" यह सुन पति अपने पुत्र से कहता है—"बेटा, तुम मामा के घर जाओ। जाकर मामा को निमंत्रण दो और तुम अपनी माईं को साथ लेकर शीघ्र आओ।"

चलो देवरनियाँ चलो जिठनियाँ राजा वीरन खों आगो दे ल्याइये।
भैया-बहन बैठ दोई मतो[1] करत हैं कौन खों का पहिराइये।
सास-ननद खों छींट छिमरिया देवरानी जिठानी खों चूनरी।
हम खों वीरन मोरे जेबर गढ़ैयो पाट बरैयो बहनेऊ खों पचरँग पागड़ी।
जे खों बहन मोरी इतनो नै पूजै[2] वो कैसे बहन घर आइयो।
जे खों बीरन मोरे इतनो नै पूजै तो पीरो खदा लै आइयो।
जोरा बीरन तुमें इतनोई नै पूजै तो रीते भले[3] सब आइयो।

(गायिका—गौरा बाई मिसरान, देवरी)

भानजे द्वारा निमंत्रण पाकर भाई अपनी बहन के घर चीकट के सम्बन्ध में सलाह करने आया। बहन अपनी देवरानी जिठानी के साथ जाकर भाई को आदर से घर ले आई। अब बहन-भाई दोनों सलाह करने बैठे। भाई ने पूछा—"बहन, बताओ, किसके लिए क्या लाना ठीक होगा ?" बहन कहती है—"सास-ननद के लिए छींट के लहँगे, देवरानी जिठानियों के लिए चूनरी, मेरे लिये पाट से बरा हुआ सोने का हार

१ मतो = सलाह, सम्मति। २ पूजै = प्राप्त हो सके। ३ रीते भले = खाली हाथ।

और बहनोई के लिए पचरंग पाग ले आना ।" इस लम्बी माँग को सुनकर भाई पूछता है—"बहन, यदि भाई की इतनी शक्ति न हो तो वह बहन के घर कैसे आवेगा ?" बहन कहती है— "भाई, जो तुम्हारी इतनी गुंजाइश न हो तो केवल पीला खदा लेकर आ जाना । और यदि खदा भी न ला सको तो रीते भले आना, पर आना अवश्य ।"

ऊबनी के गीत

बरात ऊबनी के लिए आ रही है। लड़की वाले के घर खलबली मची हुई है। सभी अपने-अपने जिम्मेदारी के काम करने में व्यस्त हैं। गाँव के स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियों की भीड़ दूल्हा तथा बरात आने की प्रतीक्षा कर रही है । इतने में बाजे-गाजे और धूम-धड़ाके के साथ दूल्हा धरती को धमकाता हुआ बरात सहित द्वार पर आ जाता है। स्त्रियाँ गाने लगती हैं:—

जब रगपत दूल्हा देसों हो आये देस रवाने होंय भलेजू ।
जब रगपत दूल्हा गेंवड़ें हो आये दूब रही हरयाय भलेजू ।
जब रगपत दूल्हा तालों हो आये ताल हिलोरें लेय भलेजू ।
जब रगपत दूल्हा बागों हो आये फूल रही फुलवार भलेजू ।
बेला हो फूली चमेली हो फूली केवड़े की बास सुहाई भलेजू ।
जब रगपत दूल्हा कुवलों हो आये मोह रही पनहार भलेजू ।
जब रगपत दूल्हा मड़वों हो आये सखियों ने मंगल गाये भलेजू ।

(गायिका—राजरानी तिवारन, देवरी)

दूल्हा बरात लेकर चल पड़ा है। तीन दिन के लिए लोग दूल्हा को बादशाह ही तो मानते हैं और वैसा ही सम्मान भी करते हैं। स्त्रियाँ तो सभी दूल्हों को रघुपति दूल्हा के रूप में देखती हैं। अच्छा, तो यह रघुपति दूल्हा चला आ रहा है। उसका प्रभाव ही ऐसा है कि वह जहाँ से निकलता है वहाँ के सारे वातावरण को बदलता जाता है; बादशाह ठहरा न। दूल्हा राजा जिस गाँव से निकलते हैं उसी गाँव के लोग बरात में शामिल हो जाते हैं। जब वह किसी गाँव के गेंवड़े पहुँचता है तो वहाँ की दूब हरी-भरी हो उठती है। जब वह किसी तालाब के किनारे से निकलता है तो तालाब में आनद की हिलोरें उठने लगती हैं। बागों के फूल खिल जाते हैं। बेला, चमेली और केवड़े की सुगंधि चारों ओर महक उठती है। जब वह दूल्हा कुएँ के पास से निकलता है तो उसके सौन्दर्य को देखकर कुएँ की पनहारिनें मोहित हो जाती हैं। वही रघुपति दूल्हा अब मंडप तले आ गया है। सखियाँ उसके स्वागत में मंगल गीत गा रही हैं।

दूल्हा द्वार पर आकर खड़ा हो गया है। इस समय ससुराल की स्त्रियाँ गीत द्वारा प्रश्नों की झड़ी लगा रही हैं। वे गाती हैं:—

कँहना के भले मालिया जिन बाग लगाये ?
कँहना की बेटी कोकिला फुल बीनन आई ?
कँहना के भले कोटिया जिन कोट उठाये ?
कँहना के बड़े तापसी चढ़ ब्याहन आये ?
सागर के बड़े कोटिया जिन कोट उठाये।
देवरी के बड़े तापसी चढ़ ब्याहन आये।
कोट[1] नवै[2] पर्वत नवैं सिर नवैं नईं कोई।
बाबुल राये माथो जब नवै जब साजन आवें।

---

१ कोट = किला। २ नवै = झुके।

यह कहाँ का कौन चतुर माली है जिसने यह सुन्दर बाग लगाय है ? यह कोकिला के समान मधुर वाणी बोलनेवाली किसकी लड़क है जो बाग में फूल बीनने आई है ? यह कौन बड़ा आदमी है जिसने यह भव्य स्वागत का गढ़ तैयार किया है ? और यह ऐसा कौन भाग्य वान तपस्वी है जो इस गढ़ पर चढ़कर ब्याहने आया है ? स्त्रिय स्वतः ही इसका उत्तर देती हैं। (नाम लेकर) लड़की वाले ने सुन्दर बाग लगाया है, उसीने यह सब स्वागत की तैयारी की है (लड़के वाले के ग्राम का नाम लेकर) अमुक नगर के अमुक जी बड़े तपस्वी हैं, वे ब्याह करने आये हैं। कोट झुक जाते हैं, पर्वत झुक जाते हैं पर मनुष्य अपना मस्तक नहीं झुकाता। उसका सिर उसी समय झुकता है जब इसके दरवाजे पर उसका समधी आता है।

जब से बरात आई है तभी से लड़की का पिता, उसके सम्बन्धी तथा पुरा-पड़ोस के सभी लोग बरात के लिये अपना सिर झुकाये खड़े हैं, क्योंकि देहात में बरात किसी एक के घर आई नहीं समझी जाती। यही कारण है कि जब गाँव में किसी गरीब से गरीब के घर भी बरात आती है तो सारा गाँव उसके स्वागत के लिए प्रस्तुत रहता है।

द्वार-पूजन का कार्य चलने लगता है। स्त्रियाँ एक के बाद एक गीत गाती चली जाती हैं। विवाह के समस्त नेंग-दस्तूर गीतों के सुमधुर वातावरण में ही सम्पन्न होते हैं।

चंदन की झँझ ओबरीं मोतन जड़ी हैं किवारीं।
जँहना बाबुल उनके पौढ़ियो माई ढोरें बिजनियाँ।
छमक अटारीं बेटी चढ़ गईं बाबुल सो गए कै जागो ?
नै हम सोवें नै जागें बेटी संसे[1] तुम्हारे।

---

१ संसे = संशय में।

संसे बाबुल मोरे जिन करो उठ पौठे[1] सँजोओ।
अपनी लड़नदे के कारने उठ सीस नवाम्रो।
इन्ती बिन्ती हम कैसे करें मोरे दोई कुल ऊँचे।
इन्ती बिन्ती वे करें जिनके दोई कुल नेंचे।

(गायिका—गोमती बाई, बेवरी)

लड़की ने देखा, दूल्हा दरवाजे पर खड़ा है। बराती टीका की राह देख रहे हैं। लड़की का पिता बरात की विशालता को देखकर हक्का-बक्का होकर अटारी पर जाकर पड़ रहा। बेटी वयस्क थी। वह स्थिति समझ गई। झट छमक कर अटारी पर पहुँची और कहने लगी—"पिताजी सोते हो या जागते?" पिता उत्तर देता है—"बेटी, न मैं सोता हूँ, न जागता, तुम्हारी ही चिन्ता में मग्न हूँ।" बेटी कहती है—"पिताजी, मेरी चिन्ता छोड़ो और उठकर शीघ्र पौंढ़ा सँजोओ। अपनी प्यारी पुत्री के कारण उठकर समधी के सम्मुख सिर झुकाम्रो।" पिता कहता है—"मैं कैसे सिर झुकाऊँ? मेरे तो दोनों कुल ऊँचे हैं। सिर तो वे झुकाते हैं जिनके दोनों कुल नीचे होते हैं।" आखिर बेटी की बात मानकर पिता नीचे उतरता है और टीका देता है। द्वारचार का कार्य समाप्त हो जाता है। बरात जनवासे को लौटने लगती है। स्त्रियाँ जाते-जाते बरात वालों से परिहास आरंभ कर देती हैं। वे गाने लगती हैं:—

मन को एकऊ नै आओ।
मन को एकऊ नै आओ।

---

१ पौठे = टीका की सामग्री, दूल्हा के बैठालने की पटली आदि।

बड़ी बड़ी मूंछों के आये।
बड़ी बड़ी नाकों के आये।
मन कौ एकऊ नै आम्रो।
बड़े बड़े पेटों के आये।
बड़े बड़े दाँतों के आये।
मन कौ एकऊ नै आओ।

ऊबनी तथा बरात देखबे का चाव गृहस्थ स्त्री-पुरुषों में तो होता ही है, पर उसके लिए गृहत्यागी मुनीश्वरों का मनरूपी भौंरा भी कैसा लुभा जाता है, यह नीचे के गीत में देखिए :—

एक समय मुनिजी आ कहें मोरे रंजन भौंरा।
चलिये जनकपुर गाँव मंडप सियाराम के मन रंजन भौंरा ।
काहे के मंडप बने मोरे रंजन भौंरा ?
काहे के दोई खंभ जनक मंडप तरें मोरे रंजन भौंरा ?
हरे बाँस मंडप बने मोरे रंजन भौंरा ।
मलयागिर के खंभ मोरे रंजन भौंरा।
सोहत सीताराम जनक मंडप तरें मोरे रंजन भौंरा।
कारी घटा घनश्याम सिया हैं दामिनी मोरे रंजन भौंरा।
देख राम के रूप थकित भये भूप मगन भई भामिनी
मोरे रंजन भौंरा।

(गायिका—लेखक की पत्नी)

चढ़ाव के गीत

बरात लगने के पश्चात् चढ़ाव चढ़ता है। यह नेग स्त्रियों के लिए बहुत आकर्षक होता है। गाँव भर की स्त्रियाँ यह देखने को टूट पड़ती हैं कि कन्या के लिये कौन कौन से जेवर तथा वस्त्र वरपक्ष से आये हैं। स्त्रियों की तात्विक दृष्टि "सिया राम मय सब जग जानी" का पूर्ण अनुसरण करती है। वे गाँव भर की लड़कियों को सियाजू और लड़कों को रामजी समझती हैं। कल्लू तेली की लड़की के चढ़ाव के समय भी यही गीत गाती हैं—"मोरी सियाजू खों आज चढ़त चढ़ाव, चलो सखी देखन चलिए।" हाँ, तो अब चढ़ाव की सारी तैयारी हो चुकी है। बहुत सुन्दरता तथा रुचि के साथ चौक पूरा गया है। बराती लोग जेवर तथा वस्त्रों की पेटी लेकर मंडप में आकर बैठ गए हैं। खवासन कन्या के सिर पर हाथ रखे उसे धीरे-धीरे मंडप में ला रही है। इसी समय स्त्रियाँ गाती हैं:—

इड़ियन छिड़ियन मोरी उतरीं लड़नदे सूरज भये हैं अलोप।

देखिए, लड़नदे के तेज के सम्मुख सूर्य भी नहीं ठहर सका। वह अस्त हो गया। खवासन लड़की को ले जाकर मंडप में बिठा देती है और स्वतः भी उसके समीप बैठ जाती है। चढ़ाव चढ़ने लगता है। स्त्रियाँ गाती हैं:—

चली है बरात मँडवा तरें आई अब चढ़ाय की भई तैयारी।
सुरहन गऊ के गोबर मँगाये ढिग धर अँगन लिपाये।
गज मुतियन के चौक पुराये कंचन कलश उजयार धराये।
अरघ दे बमना अरघ दे निकरीं सजनजू की धियारी।
पाट पीताम्बर डललन पललन सोने रूपे को पार नै पाओ।
चढ़ो है चढ़ाव जनक सुख पायो भलीभाँति कन्या पहिराओ।

(गायिका—हीराबाई खैरा बलेह, वर्तमान में देवरी, सागर)

सजनजू की घियारी के लिए सोने-चाँदी के बहुत से जेवर आये हैं। पाट-पीताम्बर के ढेर लगे हैं। स्त्रियाँ प्रसन्न होकर देखती हैं और कन्या को वस्त्राभूषण पहनाती हैं।

भाँवर तथा पाँव पखरई के गीत

पाणिग्रहण के लिए दूल्हा मंडप में आ गया है। लड़की भी दबी सिकुड़ी सी पास में बैठी है। पाणिग्रहण तथा भाँवरें पड़ना विवाह का एक बहुत महत्वपूर्ण तथा प्रधान अंग है। इस समय लड़की के माता-पिता तथा स्वजन-सम्बन्धियों की बहुत विचित्र मनोस्थिति होती है। सुख तथा दुख का अपूर्व मिश्रण रहता है। कन्या अभी तक माँ-बाप की थी, भाँवर पड़ते ही वह परायी हो जाती है। वह एक की मिटकर दूसरे की हो रही है, भला ऐसी परिस्थिति में माता-पिता के मन में कसक कैसे न उठेगी ? पर विवाह करना—परायी बनाना अवश्यंभावी है। इसीलिए हर्ष-विषाद मिश्रित स्वर से भाँवरों के समय स्त्रियाँ हृदय के उद्गार प्रकट करती हुई गाती हैं:—

पहली भाँवर जब फेरियो बेटी अबलों हमारी।
दूजी भाँवर जब फेरियो बेटी अबलों हमारी।

इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठवीं भाँवर तक स्त्रियाँ "अबलों हमारी" गाती जाती हैं। परन्तु जब सातवीं भाँवर पड़ती है, तब वे अपने हृदय पर पत्थर रखकर गद्गद् कंठ से गाती हैं:—

सातईं भाँवर जब फेरियो बेटी तब हो गई परायी।

इतने दिनों की पाली-पोसी, माता-पिता के हृदय की धन, प्यारी पुत्री आज क्षण भर में परायी हो गई। पर लाचारी है। एक-न-एक दिन यह

सुख-दुख मिश्रित लाचारी सभी पर आती है और उसे सहन करना ही पड़ता है।

भांवर पड़ने के पहले और कहीं-कहीं उसके पश्चात् पाँव पखरई का नेंग होता है। कन्या पक्ष के सभी व्यक्ति तथा गाँव-निवासी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार रुपया, पैसा, जेवर, बर्तन, गाय-बैल आदि पशु देकर वर-कन्या के पाँव पखारते हैं। एक बड़े थाल में, जिसे कोपर कहते हैं, हल्दी मिश्रित पानी रखा रहता है। पाँव पखारने वाला व्यक्ति कोपर में से दोनों हाथ की उँगली पानी में डुबोकर वर-कन्या के पैरों में लगाता है। फिर हल्दी-अक्षत वर के माथे पर तथा कन्या के घूंघट के वस्त्र पर लगाकर रुपया-पैसा (पंडित द्वारा संकल्प पढ़ने पर) कोपर में छोड़ देता है। गोदान तथा अन्य वस्तुओं के लिए जो वहाँ नहीं लाई जा सकतीं, संकल्प पढ़कर सुपारी कोपर में छोड़ दी जाती है। पाँव पखरई के समय स्त्रियाँ पाँव पखारने वाले व्यक्ति का गीत द्वारा परिचय देती जाती हैं। यह गीत बुन्देलखंड भर में सर्वत्र प्रसिद्ध है और पाँव पखरई के समय गाया जाता है।

बिच गंगा बिच जमुना तीरथ बड़े हैं पिराग।
जहाँ बिच बैठे बाबुल मोरे, देत कुआँरन दान।
तुम जिन जानो बाबुल मोरे, हमरो दियो गिर जाय।
तुमने दओ हमने पाओ गहरी गंगा अन्हाव।
दिइयो भैंस जनेई[1] साजन को खोवा[2] खाय।
दिइयो बैल मलनियाँ सुन्नें सींग मढ़ाय।
दिइयो उजरऊ[3] सी गैया छिनरू को गारीं खाय।

---

१ जनेई भैंस = ब्यानी भैंस। २ खोवा = मलाई। ३ उजरऊ = उजार करनेवाली।

जब भाई, काका, काकी, मामा, माईं आदि पाँव पखारते हैं, तो इस गीत में बाबुल की जगह उनके रिश्ते के नाम जोड़ दिए जाते हैं।

हरे मंडप के नीचे कन्यादान की परात में भरा हुआ पानी गंगा-यमुना के जल से क्या कम पवित्र है ? कन्यादान का वह स्थल उस समय स्वयं तीर्थराज प्रयाग बन जाता है। कन्या कहती है—"पिताजी, तुम यह मत समझो कि मुझे दिया हुआ दान (धन) व्यर्थ गया। तुमने आज इस हरे मंडप तले स्थित प्रयाग क्षेत्र में जो दान दिया है वह बहुत गहरे गया है। यह तुम्हारा अक्षय पुण्य है। आज मानो तुमने गहरी गंगा में स्नान किया है।" गीत आगे बढ़ता है। हास-परिहास और विनोद तो बुन्देलखंड में सर्वत्र साथ चलता है। स्त्रियाँ विनोद पर उतर आती हैं। ब्यानी भैंस, मलनियाँ बैल आदि देने की बात कहकर अंत को उजरऊ गैया देने की सिफारिश करती हैं। यह किस लिए ? जिससे उस (छिनरू) समधिन के लड़के को पुरा-पड़ोस से नित्य गालियाँ मिलती रहें। विवाह हँसी-खुशी का अवसर है। स्त्रियाँ अपने हास्यरस प्रधान गीतों द्वारा हँसी दिल्लगी का फव्वारा सदा उन्मुक्त रखती हैं।

इड़ियन छिड़ियनं मोरी उतरीं लड़नदे हार दये सरकाय।
घरियक हार सकेलो सहजादी आई है धरम की बेर।
गऊअन दान नित होंय राजा बाबुल धियरि दान नहिं होंय।
गौअन दान बाबुल भाट भिखारी धियरि दुल्हा दमाद।
चन्द्रगिहन[1] नित होंय राजा बाबुल सूरज गिहन नईं होंय।
कायखों[2] बाबुल गंगा खों जैहो कायखों तीरथ पिराग।
मड़वा भीतर बाबुल गंगा बहत है उतईं[3] हैं तीरथ पिराग।

---

१ चन्द्रगिहन = चंद्रग्रहण। २ कायखों = किस लिए। ३ उतईं = वहीं।

पाँवपखरई हो चुकने के पश्चात् अब कन्यादान का समय आ पहुँचा है। धर्म की बेला आ गई है। ऐसे समय कोई कन्या अपने पिता से कहती है—"गोदान हमेशा होते हैं, पर कन्यादान का अवसर सदा नहीं आता। ऐसा अवसर बड़े पुण्य ओर सौभाग्य से प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण बहुधा हुआ करते हैं, पर सूर्य ग्रहण तो यदाकदा ही होते हैं। पिताजी, आज यह अपूर्व पर्वकाल उपस्थित हुआ है। तुम गंगा को किस लिए जाओगे? प्रयाग को भी क्यों जाओगे? इस मंडप के भीतर ही तो आज गंगा बह रही है और यहीं तीर्थराज प्रयाग है। कन्यादान के शुभ पर्व पर गंगा और प्रयाग स्वतः तुम्हारे ही आँगन में आज आ गए हैं। जो दान-धर्म करना हो, यहीं कर लो।" हिन्दू धर्म में कन्यादान का बड़ा महत्व माना गया है। जिस मंडप तले कन्यादान होता है, वह मंडप स्वतः तीर्थराज प्रयाग बन जाता है और उसके भीतर गंगा-यमुना और सरस्वती प्रवाहित होने लगती हैं।

पाणिग्रहण के पश्चात् किसी-किसी जाति में धान-बुआई का नेंग होता है। वर-वधू पलंग पर बैठते हैं। कन्या का भाई तथा भौजाई गाँठ जोड़कर पलंग के चारों ओर सात परिक्रमा करते हैं। भाई अपने दोनों हाथों में धान ले लेता है और परिक्रमा करते समय थोड़ा-थोड़ा दोनों हाथों से जमीन पर छोड़ता जाता है। भौजाई एक लोटे में दूध-पानी लेकर अपने पति के पीछे-पीछे चलती है और थोड़ा-थोड़ा दूध-पानी धरती पर गिराती जाती है। इसे धान-बुआई का दस्तूर कहते हैं। इस समय स्त्रियाँ गाती हैं:—

धान बओ बीरन धान बओ।
यारो बहन धनबंती होय।
दुध सींचो भौजी दुध सींचो।
ननद पुतबंती होय।

(गायिका—बेदवंतीबाई गौतम, लैरी)

मानो इस थान-बुआई के नेग द्वारा नवपरिणीता बहिन को प्रजोत्पादन के कार्य के लिए दीक्षित किया जाता है और उसके धनवती तथा पुत्रवती होने की मंगल कामना की जाती है।

भोजन समय की गारियाँ

बुन्देलखंड में विवाह-समय के भोज को पंगत कहते हैं। यह शब्द पंक्ति से बना है। बरात भोजन के लिए बैठी है। पत्तलें परोसी जा चुकी हैं। ऐसे ही समय स्त्रियाँ गारी गाना प्रारंभ करती हैं। अच्छा, तो अब आप भोजन करते जाइये और गारियाँ सुनते जाइये। इन गारियों के साथ भोजन कितना स्वादिष्ट लगता है, इसका अनुभव तो आपको स्वतः ही हो जायगा। स्त्रियाँ गाती हैं :—

गढ़ परबत सें उतरीं गंगा टोरत कोट बिनासत लंका।
लंका जीत राम घर आये घर-घर होत अनंद बधाये।
घर-घर घुड़ला पलानन लागे घर-घर कुँवर सिंगारन लागे।
चली है बरात जनकपुर आई देखन उमहीं नगर की लुगाई।
छुरूं मछरियाँ छूटन लागीं, बेल फड़ाफड़ फूटन लागे।
भई आगोनी सबई सुख पायो, तब टीका की भई तैयारी।
सोने के सूत जनेऊ दीन्हें उज्ज्वल अक्षत माथे दीने।
ऐरावत से हाथी दीनें, साह करन से घुड़ला दीने।
अचहँड़ दीने पचहँड़ दीने कुंभकलश उजयारे दीने।
पलट बरात जनवासे आई तब भोजन की भई तैयारी।
दव है बुलौवा चलो रघुराई अपनी सभा सब लेहु बुलाई।
भूले होंय खबर कर लीजो, रूठे होंय मना सब लीजो।
चरण पखार चरणोदक लीने, उज्जल आसन सबको दीने।

अम्मा की पातर बर को दोना, सोने के सींक लगाव रुच दोना।
भात जो परसो बेला कैसी कलियाँ, दार जो परसी
मूँग मसुरिया।
इंजन बिजन सरस निगौना, बेसन के दस बीसक दौना।
बरा जो परसे खैरे खारे अदरक लोंग मिरच दधिवारे।
पापर परसे चुररे मुररे सुगर सुवासिन रुच बेलन बेले।
माड़े जो परसे झामक झोला, भर गई पात्तर उलँग गए दौना।
खाँड़ जो परसी मुठी बगराई, ऊपर घी की धार लगाई।
घिया जो परसो तुरत को ताजो, सबरी सभा में जाय महकानो।
अम्मा की फाँक मिरच को चूरो परसत सुगर कछू नईं भूलो।
निबुआ पौल धरो ढिग आधो, भोजन करो मनोहर माधौ।
धीरें धीरें परसो सजन अमुक राये धोती नै मैली होंय तुम्हारी।
मैली सी धोतीं फेर धुआहों गरय से साजन फिर कहाँ पाहौं।
जेउत जेउत बड़ी रुचि आई, बार बार हरि करत बड़ाई।

इस गारी में बुन्देलखंडी भोजन सामग्री के अनेक नाम आये हैं तथा उनका वर्णन जिस सुघरता के साथ किया गया है, उसकी समीक्षा करने को स्थान नहीं है। भोजन के समय इन गारियों से श्रोताओं के मन में जिस अपूर्व आनंद की सृष्टि होती है वह वर्णनातीत है। इस अवसर पर समधिनें समधी के प्रति अनेक मजाकिये गाने भी गाती हैं, जिनको सुनकर सब लोग लहालोट हो जाते हैं। हास्य के अट्टहास से सभामंडप गूंज उठता है। स्थानाभाव के कारण वे यहाँ नहीं दिये जा सके।

गंगा यमुना की गारी

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि उसमें जड़-चेतन सभी पदार्थों में परम एकता तथा सामीप्य का अनुभव किया जाता है। देश के कण-

कण को सजीव मानकर उसे माता का सम्मान दिया गया है। देश में बहने-वाली नदियाँ भी मातृस्वरूपा ही मानी जाती हैं। हमारे पुराणों में गंगा यमुना की बड़ी महिमा लिखी गई है। जब गंगा यमुना से मिलने को आगे बढ़ीं तो दोनों में बहस छिड़ गई कि आगे किसका नाम चलेगा? यमुना का कहना था, मैं ज्येष्ठा हूँ, प्राचीना हूँ; अतः अग्रजा होने के नाते मेरा ही नाम चलना चाहिए। गंगा का दावा था कि वह सीधे स्वर्ग से उतरी है और विश्वनाथ बाबा की जटाओं में घूमती हुई यहाँ आई है; इस कारण उसका नाम चलना चाहिए। आखिर, गंगा यमुना में यह समझौता हुआ कि नाम चले गंगा का और रूप यमुना का। सरस्वती ने जब देखा कि नाम और रूप, जिसका यह संसार है, दोनों का बटवारा हो गया, तो वह रुष्ट होकर अदृश्य हो गई। तब गंगा यमुना ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"बहिन, भले ही नाम रूप हमारा रहे, पर हम तुम्हें अपने से विलग न होने देंगी, वरन् अपने सिर पर वेणी बनाकर धारण करेंगी।" पुराणों की इस कथा का रूप हमारी एक बुन्देलखंडी गारी में अप्रत्याशित रूप से मिलता है। गारी यह है :—

भागीरथ ने करी तपस्या गंगा आन बुलाईं मोरे लाल।
भागीरथ के पुरखा तर गए तर गव सब संसार मोरे लाल।
सरग लोक सें गंगा निकरीं शंकर जटा समानी मोरे लाल।
शंकर जटों से निकसी गंगा जमुन मिलन खों धाई मोरे लाल।
मिलतीं बिरियाँ गंगा झिझकीं हम लुहरी तुम जेठी लाल।
जो हम तुमसें मिलहें बहन मोरी नाव हमारो मिट जैहे
मोरे लाल।
कायखों बैन पलट घर जातीं हम तुम दोऊ मिल रैबू लाल।
तुम लुहरी हम जेठी जो कहिए राखें तुमारो दुलार मोरे लाल।
हम कारीं तुम गोरी जो कहिए तुमरोई चलहै नाव मोरे लाल।

इतनी सुनकें गंगा उमड़ीं दोई मिल संगे हो गईं मोरे लाल ।
गंग जमुन दोई बहनें मिलके जगतारन हो गईं मोरे लाल ।
जो कोऊ संगम आन नहा है तर बैकुंठे जैहे मोरे लाल ।
हीराबाई ने गारी गाई सब संतन मन भाई मोरे लाल ।

नीचे लिखी गारी में श्री राधा प्यारी शरद रैन के उजियारे में यमुना पुलिन पर आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र के साथ नाच रही हैं। उसकी छटा देखिए:—

हरे लीलिया वारी श्री राधा प्यारी ॥
वृन्दा विपन सुहावन अति ही शरद रैन उजयारी ।
जमुना तीर पुलिन की शोभा फूल रही फुलवारी ॥
चलत पवन मन मौज बढ़ावत मंद सुगंधित प्यारी ।
निरतत लाल सहित ब्रजबाला चपल तुरँग गति न्यारी ॥
बजत अनेक भाँति मृदु बाजे बीन बजत सुखकारी ।
दूगन स्वर कोऊ सखी अलापत कहत लाल गिरधारी ॥
नाचत शीस फूल झर परते बदन बिंदु श्रम न्यारी ।
कबहुँक श्याम विलग ह्वै नाचत ताल देंय ब्रज नारी ॥
फूलमती कह सुर बरसाबत सुमन देव सहनारी ।

दूल्हा जब ससुराल में कलेवा को जाता है तब उसकी सालियाँ, सरहजें उससे हास-परिहास करती हैं। बुन्देलखंड में दूल्हा को लाला कहते हैं। प्रत्येक दामाद गाँव भर का लाला हुआ करता है। स्त्रियाँ परिहास करती हुई गाती हैं:—

लागत रहे नीके लाला आय हते जा दिन से ।
हमने सुनी अवध की नारीं दूर रहें पुरसन सें ।

लाला दूर रहें पुरसन से ॥
खीर खाय सुत पैदा करतीं लाला बड़े जतन सें ।
लाला बड़े जतन सें ॥
नार ताड़का तुम्हें देखकें दौरी आई बन सें ।
और करतूत बनी नईं तुमसें धर छेदी बानन सें ।
लाला धर छेदी बानन सें ॥
बहन तुमारी तुम्हें छोड़ कें जाय बसी रिसियों के ।
बुरो मान जिन जैयो लाला इन साँची बातन सें ।
लाला इन साँची बातन सें ॥
साँची झूठी तुम सब जानो का कह सकत बड़न सों ॥

(गायिका—हीराबाई तथा गौराबाई मिसरान, देवरी, सागर)

जनकपुर में रामजी की साली-सरहजें उनसे हँसी-मसखरी कर रही हैं। उन्होंने सुन रखा है कि अयोध्या की स्त्रियाँ खीर खाकर पुत्र पैदा कर लेती हैं—उन्हें पुरुष की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे पूछती हैं—"लाला क्या यह सच है ? हमने सुना था, ताड़का नाम की एक स्त्री तुम्हारे रूप-सौंदर्य को देखकर तुम्हारे पास दौड़ी आई थी। तुमसे और तो कुछ करतूत न बनी, खिसियाकर उसे बाणों से छेद डाला ? और सुनते हैं, तुम्हारी बहिन शान्तादेवी ऋषियों के पास रहने लगी हैं ? क्या ये बातें सच हैं ? ठीक है, बड़ों से कौन क्या कह सकता है ?"

कंकन छोड़ने तथा विदाई का गीत

विवाह-कार्य सम्पन्न हो चुका है। जनकपुर की नारियाँ— राम की साली सरहजें रामजी से कंकन की गाँठ खुलवा रही हैं। वे गाती हैं:—

जो नें होय धनुष को टोरबो, कठिन कंकन छोरबो।

तुमने जनकपुरी पग धारे शिव के धनुष टोरकें डारे ।
जो नें होय मारीच को मारबो कठिन कंकन छोरबो ।
जनकपुरी की नारीं आखिर सारी लगें तुम्हारीं ।
जिनखों बिन हथयारन मारबो कठिन कंकन छोरबो ।
बे तो जनकपुरी की नारीं हाँसी करें तुम्हारीं
अब तो सीखो सिया खों कर जोरबो । कठिन कंकन...

शिव-धनुष के तोड़ने तथा मारीच के मारने से भी कठिन कंकन छोड़ना है । गाँठें इतनी सख्त लगाई जाती हैं कि अनेक दूल्हे घंटों उनके खोलने में उलझे रहते हैं ।

अब बरात विदा लेने के लिए दरवाजे पर आ खड़ी हुई है । बेला सोंपने के पश्चात् उभय पक्ष के व्यक्ति हृदय लगाकर मिलते हैं । विदा का समय है । सबके मन में उदासी छाई हुई है । इसी समय इस उदासीनता के वातावरण को भेदकर स्त्रियाँ गा उठती हैं:—

हँस जैयो सजना विहँस जैयो रे ।
तुमरो कछू नईं चाहें विहँस जैयो रे ।
सो रूपो रुपैया साजन हमईं से लै ले,
सो अपनो करकें बताँय जैयो रे । हँस जैयो......
लौंगों के बटुवा साजन हमईं सें लै ले,
सो अपनो करकें खुँसाय जैयो रे । हँस जैयो......
पानों की बिरियाँ साजन हमईं सें लै ले,
सो अपनी करके रचाँय जैयो रे । हँस जैयो......

(गायिका—रामकुंवर बाई, देवरी)

समधनों की माँग कितनी समयोचित और न्यायसंगत है। वे बिदा के समय अपने साजन को हँसते—खेलते, प्रसन्न मन से जाते देखना चाहती हैं। वे उनसे रुपया-पैसा, पान-सुपारी कुछ नहीं चाहतीं। ये चीजें वे स्वतः उनको देती हैं, उनकी माँग है कि उन्हींकी चीजें लेकर उनका सम्मान किये जाओ। वर पक्ष से लड़के की सास, फफुवा सास तथा सवासनों को जो वस्त्रादि नेग में दिये जाते हैं वे केवल उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने को होते हैं। वे उन्हें ग्रहण नहीं करतीं—वापिस कर देती हैं। 'रस राख बिदा करबो कठिनाई' के महत्व को स्त्रियाँ समझती हैं। इसलिए वे अपने साजन से प्रसन्न होकर जाने का आग्रह करती हैं।

बुन्देलखंडी लोकगीतों में होली तथा फागों की बहार

होली जीवन-जागृति का एक राष्ट्रीय त्योहार है। होली के समय हास-परिहास तथा उल्लास अपनी चरम सीमा को पहुँचकर दसों दिशाओं में उमग पड़ता है। गाँव-गाँव में मस्ती छा जाती है। वन-उपवन, बाग-बगीचों में कोयल की सुरीली तान सुनाई देने लगती है। कुहू-कुहू शब्द से दिगदिगन्त गूँज उठता है। आम्रवृक्ष मंजरी से लद जाते हैं। वन नव-जीवन प्रारंभ करते हैं। वे नई कोमल पत्तियों के परिधान से सुसज्जित होकर ऋतुराज वसंत का स्वागत करने के लिए तैयार हो जाते हैं। वासंती वनश्री टेसू फूलों की लाल चूनरी ओढ़कर इठला उठती है और वह अपनी मस्ती से जन-मन और कण-कण को सराबोर कर देती है। ऐसे सुखद और सुहावने अवसर पर बुन्देलखंड के युवक-युवती, स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ होली खेलते हैं। एक-दूसरे पर रंग-गुलाल फेंकते हैं। रंग की बौछार तो वसंत में भी वर्षा की बहार ला देती है। रँगीले युवकों की टोलियाँ ढोल, मृदंग, टिमकी, नगरिया आदि से सुसज्जित होकर गाने को निकल पड़ती हैं। नर्त्तकियाँ अपनी भाव-भंगिमाओं से उपस्थित जन-समूह को आत्मविभोर कर देती हैं। फाग गाने के पहले उसकी कुछ साखें या कबीर गाये जाते हैं।

होली की साखें

(१) प्रीतम प्रीत लगाय कें बसन दूर जिन जाव।
बसो हमारी नागरी सो दरसन दै दै जाव।

नजर सें टारे टरो नईं मोरे बालमा ।

(२) सब के सैयाँ नीरे बसत हैं मो दोसन[1] के दूर ।
घरी घरी पै चाने है[2] सो हो गए पीयरा मूर ।

(३) आँगन सूके सूकनो[3] बन सूखे कचनार ।
गोरी सूखें मायकें हीन पुरुष की नार ।
हमें सुख नैयाँ सासुरे आये को ।

(४) नई गोरी नए बालमा नई होरी की झाँक ।
ऐसी होरी दागियो[4] तोरे कुले नै आवे आँच ।
समर के यारी करो मोरे बालमा ।

(५) आग लगी दरयाव में धुआँ न परगट होय ।
कै दिल जाने आपनो कै जा पर बीती होय ।
काऊ[5] की लगन कोऊ का जाने ?

(गायक—बदनसिंह दांगी, बिचुवा)

इतने में बेड़नी गा उठती है:—

भुनसारें चिरैया काय बोली ?
अरे काय बोली कैसी बोली ?
भुनसारें चिरैया काय बोली ?
ठंडे से पानी गरम कर ल्याये ।
सपरन न पाये पिया फिर बोली ।
ताती जलेबी दूधा के लड्डुआ,
जेवन न पाये पिया फिर बोली ।

---

१ दोसन = दुखनी । २ चाने है = चाह है, आवश्यकता है ।
३ सूकना = सुखेना, अनाज । ४ दागियो = जलाना । ५ काऊ = किसी ।

पाना पचासी के बीरा लगावे,
चाबन नै पाये पिया फिर बोली।
भुनसारें चिरैया काय बोली ?

—'मधुकर' से

आज प्रातःकाल से ही एक चिड़िया किसी सुन्दरी के आँगन में बोल रही है। प्रियतम को स्नान कराते समय, भोजन कराते समय, पान खिलाते समय चिड़िया का बोलना युवती को रुचिकर प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि वह उसकी आत्मविभोरता में बाधक बन रही है।

अब दूसरी टोली की ओर से फाग उठाई जाती है :—

दोई नैनों के मारे हमारे जोगी भये घरबारे लाल।
जोगी भये घरबारे हमारे जोगी भये पिय प्यारे लाल।
अंग भभूत बगल मृगछाला सीस जटा लिपटाने,
हमारे जोगी भये घरबारे लाल।
हाथ लँय कुंडी बगल लँय सोटा
घर घर अलख जगावें। हमारे जोगी...

इस रमणी के नयनों की करामात तो देखो—उसके नयनों की मार से उसका घरवाला जोगी बनकर घर-घर अलख जगाने लगा है। मदमाते नयना जो न करें सो थोड़ा है!

छोटे बलम बड़ी नारे ना,
जर जैयो हमारे जोबेना।
पानी खों गए पिय संग लग जावें,
हाथ में लै लँय डोरेना। जर जैयो...
गोबर खों गए पिय संग जो लग गए,

सार में मचल गए बालेमा । जर जैयो...
हमारे खेत में बरिया को पेड़ो,
ओई सें डार दये पालेना । जर जैयो...
कै गोरी तुमरे भाई भतीजे,
कै जे तुमारे लालेना । जर जैयो...
नैं आँय भैया मोरे ललनवाँ,
जे तो हमारे बालेमा । जर जैयो...

(गायिका—रामबाई जसोंदन, देवरी)

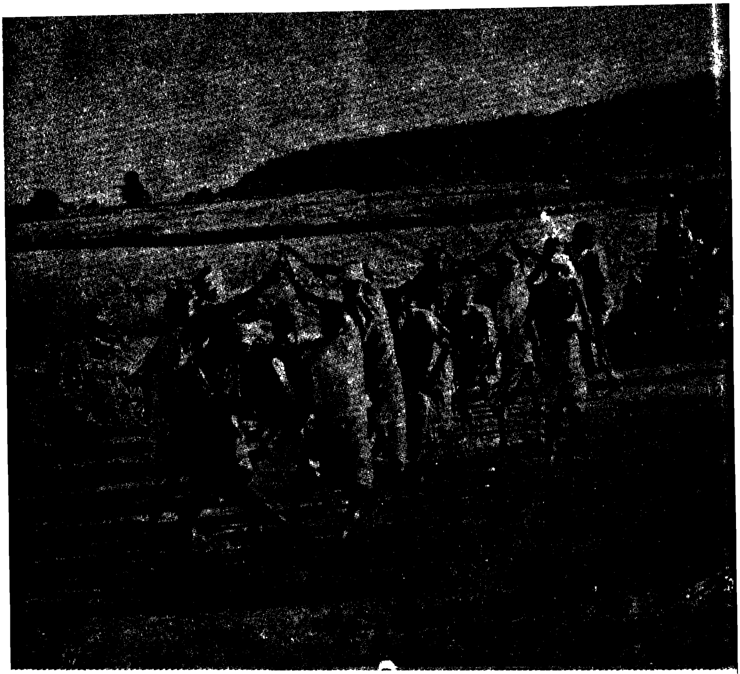
बुन्देलखंड की अनेक पिछड़ी हुई जातियों में बाल-विवाह की प्रथा अब भी जोर पकड़े हुए है। लोकगीतों तथा कहानियों से जाना जाता है कि किसी समय यहाँ 'डलियों भाँवर' पाड़ने की प्रथा थी। अनेक माता-पिता तो गर्भस्थ बच्चों का, यदि दोनों के लड़का-लड़की हो तो, विवाह कर देने की प्रतिज्ञा पहले ही कर बैठते थे। ऊपर के गीत में बड़ी बहू और छोटे पति की विडंबना का सजीव चित्र खींचा गया है। नव-यौवना वधू अपनी उमंगों के हिंडोले में बैठकर झूलती है और ऐसे समय उसका पति बाल-सुलभ मचलाई ठानता है। ऐसी स्थिति में उसका यौवन भार-स्वरूप हो उठता है और वह इस अनुपयोगी यौवन के जल-भुंज जाने की कामना करती है। उसकी कसक तो उस समय सीमा पार कर जाती है जब राहगीर उससे पूछता है—"यह क्या तुम्हारा लड़का है ?"

इस बीच कोई शरीर की क्षणभंगुरता विषयक फाग छेड़ देता है :—

तनक भरोसो नैयाँ ए तनको, तनक भरोसो नैयाँ लाल ।
खा ले पी ले और बिलस ले, संग कछू नै जैहे लाल ।



करमा नृत्य



शैला नृत्य



अहीर नृत्य



राई नृत्य (सम्पादक, 'धर्मयुग' के सौजन्य से)

जब जमराजा के छूटे सिपाही घालन लगे मुँगरियाँ लाल ।
जब जमराज चढ़े छाती पै बोलन लगीं चिरैयाँ लाल ।
कोठन कोठन दुकत प्रान जे कोऊ काऊ को नैयाँ लाल ।
देह जरै जैसें करकट कूरा केस घास को पूरा लाल ।
मानस चाम काम नईं आवे पसु की बनत पनैयाँ लाल ।

देखिए, एक युवती गाती है :—

मो पै रंगा ने डारो साँवलिया,
मैं तो ऊँसई अतर में डूबी लला । मो पै रंगा...
केसर डार रस रंगा बनाई हरे बाँस पिचकारी लला ।
भर पिचकारी मोरे सन्मुख मारी भींज गई तन सारी लला ।
जो सुन पाहें ससुरा हमारे आउन न दैहें बखरियों लला ।
जो सुन पाहें जेठा हमारे, छीयन न दैहें रसोई लला ।
जो सुन पाहें सैयाँ हमारे, आउन न दैहें सिजरियों लला ।

(गायक—राधाचरण चौबे, पुरेना करन, पो. देवरी)

प्यारे लाला, देखो मुझ पर रंग मत डालना । यदि मेरे ससुर सुन लेंगे तो घर नहीं आने देंगे, जेठ सुन लेंगे तो रसोई घर में न घुसने देंगे । यहाँ तक तो ठीक, पर यदि मेरे सैयाँ सुन पायेंगे तो वे मुझे सेजों पर न आने देंगे । एक तरुण स्त्री का ऐसा सोचना बहुत स्वाभाविक है ।

चलते-चलाते एक फाग और सुनते जाइये :—

दिलडारें अटा पै काय ठाढ़ी ?
काय ठाढ़ी कैसे ठाढ़ी, दिलडारें अटा पै काय ठाढ़ी ?
कै तोरी सास-ननद दुख दीनो कै तोरे सैयाँ नें दई गारी ?

नै मोरी सास-ननद दुख दीनो नै मोरे सैयाँ ने दई गारी।
मायके के यार सपने में दिखे आई हिलोर फटै छाती।

एक युवती उदास मन से अटारी पर खड़ी है। उसकी सहेली उसकी उदासी का कारण पूछती है। कहती है—"आज तू उदास क्यों है? क्या तेरी सास-ननद ने तुझे दुख दिया है या पति ने गाली दी है?" वह कहती है—"नहीं सखी, ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे आज सपने में अपने मायके के एक मित्र के दर्शन हुए हैं। उसीकी याद में छाती फटी जा रही है।"

बुन्देली लोकगीतों में ईसुरी की फागें

ईसुरी बुन्देलखंड के एक अत्यन्त लोकप्रिय गीत-प्रणेता थे। उनकी फागें इधर सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाओं में अनुभवों की छटा और भावों की गंभीरता देखते बनती है। रचना की सरसता, सुकुमारता, सजीवता तथा भावों की अभिव्यञ्जना में उनकी तुलना साहित्यिक महाकवियों की कोटि में की जा सकती है। उनके काव्य की भाषा भले ही ग्रामीण है, पर भावप्रदर्शन में वे महाकवियों के समान पटु थे। नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

ईसुरी का जन्म १८८१ वि० में झाँसी के निकट मेंड़की नामक ग्राम में हुआ था। इनका पूरा नाम ईश्वरी प्रसाद तिवारी था। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम भोले तिवारी था। ये बगौरा गाँव के नम्बरदार चतुर्भुजसिंह के यहाँ कारिन्दा हो जाने के कारण कुछ समय तक बगौरा में भी रहे थे। उन्होंने अपना परिचय "नम्बरदार चतुर्भुज जू के हम कारंदा आँयें" कह कर दिया है। ये निस्संतान थे। इस कारण उन्होंने विलासी पाटक को अपना दत्तक पुत्र बनाया था।

ईसुरी अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। सादा कुरता, धोती और साफा पहिनकर शुद्ध देहाती जीवन बिताते थे। इन्होंने अपने जीवन-काल में हजारों फागें रची हैं। अगहन शुक्ल सप्तमी सम्वत् १९६६ में उनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकरण में उनकी फागों के कुछ नमूने दिये जाते हैं। यहाँ उनकी समीक्षा करने को स्थान नहीं है। उनकी प्रत्येक रचना स्वतः खुली हुई समीक्षा है।

करके नेह टोर जिन[1] दैयो, दिन-दिन और बढ़ैयो।
जैसे मिले दूध में पानी, ऊँसई[2] मनै मिलैयो।
हमरो और तुमारो जौ जिउ, एकई जाने रैयो।
कहत ईसुरी बाँह गहे की, खबर भूल जिन जैयो।

× × ×

इनके अजब सिकारी नैना, छैल छड़कते रैना[3]।
भोंय कमान बान चितवन सी, लयें रात दिन सेना।
परतन दाव[4] चाव ना चूकें, पंछी उड़त बचैना।
छिपे रात[5] घूँघट के भीतर, वे भौंचक उगरैना।
पर जियरा के लेन ईसुरी, वे निरदई कसकें ना।

इन शिकारी नयनों की करामात देख ली। इनसे छड़कते रहने ही में भलाई है। दाँव पड़ने पर वे घात करने से नहीं चूकते हैं। उड़ता पक्षी भी उनसे नहीं बचता है। गनीमत तो यह है कि वे घूँघट के भीतर छिपे रहते हैं, सदा खुले नहीं रहते; अन्यथा गजब ढाते।

अब गौने की उत्सुकता का चित्र देखिए :—

वे दिन गौने के कब आवें, जब हम ससरारे जावें।
बारे बलम लिवौआ होकें, डोला संग सजावें।
गा गा गुइँया गाँठ जोर कैं, दोरे लौं पहुँचावें।
हाते लगा सास ननदी के, चरनन सीस नवावें।
ईसुर कवें फलानेजू की, दुलहिन टेर कहावें।

---

१ जिन = नहीं। २ ऊँसई = वैसे ही। ३ रैना = रहना। ४ दाव = मौका, अवसर। ५ रात = रहते हैं।

अब पटियों की पटेबाजी भी देखिए :—

पटियाँ कौन सुघर[१] ने पारीं, लगीं देखतन प्यारीं।
रंचक घटी बढ़ी हैं नैयाँ, साँसे[२] कैसी ढारीं।
तनरईं[३] आन[४] सीस के ऊपर, स्याम घटा सीं कारीं।
ईसुर प्रानखान[५] जे पटियाँ, जबतें तकी[६] उघारीं[७]।

× × ×

यारी सदा निबायें रैयो, बीच बिसर जिन जैयो।
जैसो दिल है हाल दिनन में, एसोई राखें रैयो।
सुनकें बात जिया मोरे की, अपने जिउ की कैयो।
अबै कछु बिगरो नई ईसुर, बाँय समर कें गैयो[८]।

× × ×

साकी—उठो पिया अब भोर भये, चकई बोली ताल।
मुखबिरियाँ[९] फीकीं परीं, सियरी[१०] मोतन माल।
पिया उठ जागो कमल बिगसन[११] लागे।

फाग—बहुतक हल्की सी ननदुलिया,[१२] लागी देन बिंदुलिया।
ऐसी निगन[१३] निगत लरकन में, डारें हाथ हतुलिया।
छूटी नहीं लरम मुँइयाँ सें, जा तोतली बतुलियाँ।
ईसुर फिरत पान सो खायें, मिस्सी लगी दतुलियाँ।

---

१ सुघर = चतुर। २ साँसे = साँचा। ३ तनरईं = छा रहीं। ४ आन = आकर। ५ प्रानखान = प्राण लेनेवाली। ६ तकीं = देखीं। ७ उघारीं = खुली हुई। ८ गैयो = पकड़ना, गहना। ९ मुखबिरियाँ = मुँह का पान। १० सियरी = मलिन। ११ बिगसन = फूलने। १२ ननदुलिया = ननद। १३ निगन = चाल।

देखिए, इस फाग का शब्द-विन्यास कितना मधुर है । अन्त्यानुप्रास भी कहीं शिथिल नहीं होने पाया है ।

दतिया में हतिया पजें, और पन्ना में हीरालाल।
टीकमगढ़ सूरा[1] पजें, जिनकी बेंड़ी[2] चले तरवार ।

दुसमन पास कबऊँ नईं आवे हो ।
जब से भई प्रीत की पीरा, खुसी नईं जो जीरा ।
कूरा माटी भओ फिरत है , इतै उतै मन हीरा ।
कमती आगई रकत माँस की, बहै दृगन सें नीरा ।
फूँकत जात बिरह की आगी, सूकत जात शरीरा ।
ओई[3] नीम में मानत ईसुर, ओई नीम को कीरा ।

× × ×

मोरे मन की हरन मुनैयाँ, आज दिखानी नयाँ ।
कै कऊँ हुइये लाल के संगे, पकरी पिंजरा मैयाँ ।
पत्तन पत्तन ढूँड़ फिरे हैं, बैठी कौन डरैयाँ ।
कात[4] ईसुरी इनके लाने, टोरीं सरग तरैयाँ ।

× × ×

चलती बेर नजर भर हेरो, दिल भर जावे मेरो ।
मिला लेव आँखन सों आँखें, घूँघट तनक उगेरो[5] ।
आँसू गिरत दोऊ नैनन सें, चितै रहो मुख तेरो ।
ईसुर आई बिदा की बेरा, भओ विधाता डेरो ।

---

१ सूरा = शूरवीर २ बेंड़ी = गजब की । ३ ओई = उसी ।
४ कात = कहता है । ५ उगेरो = खोलो ।

मनुष्य शरीर की असारता का कैसा सुंदर वर्णन किया है। शरीर के लिए 'भाड़े की बखरी' उपमा अभिनव और अनूठी है।

बखरी रैयत है भाड़े की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।
बेबंदेज[1] बड़ी बेबाड़ा,[2] जेई में दस द्वारे की।
किबार किबरियाँ एकऊ नैयाँ, बिना कुची तारे की।
ईसुर चाय निकारो जिदना, हमें कौन डबारे की।

× × ×

इक दिन होत सबई को गौनो, होनो उर अनहोनो।
जाने परत सासरें सब खाँ, बुरव लगै चाय नौनो[3]।
आँय लुबौआ वे ना माने, चाँय बता दो सोनो।
ईसुर बिदा हुए जा जिदना,[4] पिय के संग चलौनो।

× × ×

सपनन दिखा परे मोय सैयाँ, सुनो परोसन गुइयाँ।
आपुन आय उसीसे[5] ठाड़े, झपट परी मैं पैयाँ।
उनके दृग दोऊ भर आये, मोरी भरीं डबैयाँ[6]।
ईसुर आँख दगा में खुल गई, हतो उतै कोऊ नैयाँ।

अहा! कैसा मधुर स्वप्न था, पर दईमारे दैव से वह भी न सहा गया। उसने धोखे में मेरी आँख खोल दी।

---

१ बेबंदेज = बिना इन्तजाम की। २ बेबाड़ा = अस्त-व्यस्त। ३ नौनो = भला, अच्छा। ४ जिदना = जिस दिन। ५ उसीसे = सिरहाने। ६ डबैयाँ = आखों में आँसू भर आना।

सीता हरण के पश्चात् मन्दोदरी रावण को समझाती है :—

तुमने मोरी कही नैं मानी, सीता ल्याये बिरानी।
जिनकी जनक सुता सी रानी, वे हरि अंतरध्यानी।
हेम कँगूर धूर में मिलजैं, लंका की रजधानी।
लैकें मिलो सिखावत जेऊ, मंदोदरी सयानी।
ईसुर आप हात हरयानी, अपनी मौत निसानी।

× × ×

छूटे नैन-बान इन खोरन,[1] तिरछी भोंह मरोरन।
ई[2] गलियन जिन जाव मुसाफर, गजब परो इन दोरन।
नोकदार बरछी से पैने, चलत करेजे फौरन।
ईसुर हमने तुमसे कैदई,[3] घायल डरे करोरन।

देखो, देखो, वह बाला तिरछी भौंह मरोर कर नयन-बाण चला रही है, वे कलेजा छेदे बिना न रहेंगे। वाह! कैसे गजब के नयन हैं, जिनके मारे करोड़ों मुसाफिर गलियों में घायल पड़े हैं। हैं भी तो बहुत पैने।

ज़रा कारे रंग की कारगुज़ारी भी देख लीजिए :—

गोरी कठिन होत हैं कारे, जितने ई रँग बारे।
कारे रँग के काट खात जब, जहर न जात उतारे।
कारे रँग के भँवर होत हैं कलियन पै गुंजारे।
कारे रँग के काम पखौआ पटियन जात उन्हारे[4]।
ककरिजिया[5] खों ओढ़ ईसुरी खकल[6] करेजे डारे।

---

१ खोरन = गलियों। २ ई = इस। ३ कैदई = कह दिया। ४ उन्हारे = उपमा दिये जाते। ५ ककरिजिया = काले रंग की। ६ खकल = दाँतों से क्षत-विक्षत करना।

सचमुच में, काले रंग के बड़े भयंकर होते हैं। उनके काटे का कोई इलाज नहीं। काली काकरेजी ओढ़नी ओढ़कर युवतियाँ देखनेवालों का कलेजा खखल खाती हैं। काले रंग का कमाल है!

ऐसे अलबेली के नैना, मुख से कात बने ना।
तामे परै सोऊ छिद जावे, अगल बगल बरकै ना।
लागत चोट निसाने ऊपर, पंछी उड़त बचै ना।
जियरा लेत पराये 'ईसुर' जे निरदई कसकें ना।

लोककवि 'ईसुरी' ने नेत्रों का वर्णन बड़ी सूक्ष्मदर्शिता से किया है। नयनों की निशानेबाजी इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि उससे सामनेवाला तो घायल होता ही है, पर अगल-बगल वाला भी नहीं बच पाता। उड़ता हुआ पक्षी भी उसकी चपेट में आ जाता है। कैसी गजब की निशानेबाजी है! दाएँ, बाएँ, ऊपर, नीचे कहीं भी कोई नहीं बचता।

जो तन हो गव सूक छुहारो, बैसई हतो इकारो।
रै गई खाल हाड़ के ऊपर, मकरी कैसो जारो।
तन भव बाँस, बाँस भव पिंजरा, रकत रओ ना सारो।
कहत 'ईसुरी' सुन लो प्यारी, खटका लगो तुमारो।

प्रेम-मार्ग का खटका कैसा होता है, इसका ईसुरी ने सजीव चित्र खींचा है। जब से प्रीति की पीर हुई, तब से इकहरा बदन सूखकर छुहारा हो गया है। शरीर के ढाँचे पर केवल खाल मढ़ी रह गई है। रक्त-मांस सब सूख गया है। मकड़ी के जाल के समान मढ़ी खाल पर से शरीर के भीतर की सब हड्डियाँ साफ गिनी जा सकती हैं। मकड़ी के जाले और बाँस के पिंजरे की उपमा कितनी उपयुक्त और फबती हुई है।

हम तें दूर तुम्हारी बखरी रजऊ हमें जा अखरी।
बसौ चाइयत दोर सामने, खोर सोऊ हो सकरी।

तकछक नहीं मिलत कढ़वे की, घरी भरें खों छकरी।
फिर आवें फिर जावें ईसुर, भये फिरत हैं चकरी।

प्रेमी को रजऊ (प्रेमिका) की बखरी दूर होना बहुत खटक रहा है। कवि कहता है—चाहिए तो यह था कि प्रेमिका दरवाजे के सामने बसती। इस पर भी गली सकरी होना थी। परंतु, भाग्य की विडंबना तो देखो, रजऊ का घर दूर है। वह प्रेमिका के दर्शन को जाता है और तकछक न मिलने के कारण निराश होकर लौट आता है। दिन-रात चकरी के समान चक्कर काटता रहता है। 'तकछक' शब्द बहुत कमाल का है। 'अवसर' में वह गोपनीयता और उतावलीपन कहाँ जो 'तक-छक' में है। चकरी की उपमा भी बहुत अर्थपूर्ण है। डोर में बँधी हुई चकरी जिस प्रकार उँगली के इशारे से बारंबार जाती और लौटती है, वही दशा प्रेमी की हो रही है; प्रेमिका के दर्शन की लालसा में दिन-रात चक्कर लगाया करता है।

ईसुरी की सहज काव्य-प्रतिभा फागों में प्रस्फुटित हुई है। उसकी फागें बुन्देलखंड में बहुत प्रसिद्ध हैं, यद्यपि इनका प्रचलन अशिक्षित तथा अर्द्ध-शिक्षित जन-समुदाय में ही अधिक है। इस प्रतिभाशाली लोक कवि ने अपनी सहज काव्य-शक्ति द्वारा अनादृत लोकगीतों को साहित्य तथा संगीत का स्वरूप प्रदान किया है। ईसुरी की फागों में श्रृंगार रस छलकता-सा दिखाई देता है। परंतु कहीं-कहीं उसने आध्यात्मिकता की ओर भी अपने भावों को मोड़ा है। अनेक लोग कहते हैं कि ईसुरी की नायिका 'रजऊ' कल्पित आदि शक्ति थी, जिससे प्रेम करना ईश्वर से प्रेम करने के सदृश था। जो हो, पर इसमें संदेह नहीं है कि ईसुरी में एक महाकवि जैसी प्रतिभा थी और वह अपने क्षेत्र में पूर्णरूपेण सफल हुआ है।

बुन्देलखंडी गीतों में काव्य-सुषमा

साहित्य द्वारा मानव-समाज की आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों का दर्शन होता है। विज्ञान की तरह साहित्य भी मनुष्य-मस्तिष्क की बहुमूल्य देन है। विज्ञान के विकास ने मानव-समाज की आवश्यकता-पूर्ति और उपयोग के लिए नई-नई खोजों द्वारा हमें आग जलाकर रोटी बनाने से लेकर अणु तथा उद्जन शक्ति तक पहुँचा दिया है। विज्ञान का उपयोग लोक-निर्माण तथा सत्य की प्रतिष्ठा के लिए होना वांछनीय है। इसी प्रकार सामान्यतः साहित्य में भी सदा कल्याणकारी भावनाओं को श्रेष्ठ माना गया है। हमारे पुराणकारों तथा महाकवियों ने अपने चरित्र नायकों के चरित्र-चित्रण द्वारा भले-बुरे, ग्राह्य-अग्राह्य का भेद स्पष्ट रीति से घोषित कर दिया है। साहित्य ने सदा सत्यं शिवं सुन्दरम् का अनुमोदन तथा अनुचित का विरोध दर्शाया है। संस्कृत के उद्भट विद्वान श्री मम्मटाचार्य के मतानुसार शुभ की रक्षा करना ही साहित्य का प्रयोजन है। साहित्य मानव-जीवन की प्रगति के इतिहास का माध्यम है। साहित्य द्वारा ही मनुष्य आज प्रकृति और जीवन के विराट संघर्ष में विजय प्राप्त कर सका है।

लोगों की धारणा है कि कविता में प्रौढ़ तथा उच्च भावों का लाना प्रबुद्ध कवियों का ही काम है। देहात के अपढ़ गँवार उसे क्या जानें? पर जिन लोगों ने बुन्देलखंडी लोकगीतों का अध्ययन किया है या करेंगे, उनकी उपर्लिखित धारणा अवश्य निर्मूल हो जायगी। शहरी सुशिक्षित जन यदि नाना प्रकार के छंदों द्वारा रचित महाकवियों के काव्य पढ़कर आनंदानुभूति उपलब्ध करते हैं तो हमारे ग्रामीण स्त्री-पुरुष

अनगढ़ किन्तु भावपूर्ण गीतों द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं। उनके गीतों में भले ही शब्दाडम्बर तथा उपमा उपमेय और अलंकारों की बहुलता न हो, परंतु वे बड़े ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी होते हैं, क्योंकि भाषा तो भावों का परिधान मात्र है। भाषा-भेद से भावों की व्यञ्जना में कोई बाधा नही पहुँचती।

बुन्देली भाषा में लोक-साहित्य का अनूठा भंडार भरा पड़ा है। इसका कारण यह है कि यहाँ की भूमि अनादि काल से कवि-प्रसविनी रही है। भारत के श्रेष्ठतम कवियों को उत्पन्न करने का गौरव तो उसे प्राप्त हुआ ही है, किन्तु यहाँ आल्हा, ऊदल, हरदौल और छत्रसाल सरीखे वीर-शिरोमणि तथा झाँसीवाली रानी तथा दुर्गावती जैसी वीरांगनाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। इनकी वीर-गाथाएँ घर-घर गाई जाती हैं। इन नर पुंगवों की कीर्ति ग्राम्य गीतों आदि के रूप में परम्परा से चली आती है।

बुन्देली भाषा का लालित्य अनूठा है। उसके शब्द बहुत ही कोमल श्रुतिमधुर तथा शिष्टता बोधक होते हैं। कविवर सत्यनारायणजी ने ब्रजभाषा के लालित्य के विषय में लिखा है :—

बरनन को करि सकत भला तेहि भाषा कोटी।
मचलि मचलि जामें माँगी हरि माखन-रोटी।

पर, बुन्देलखंडी भाषा के अन्यतम विद्वान श्री कृष्णानंद जी गुप्त लिखते हैं, "बुन्देली लोकगीतों में जो भाषा का लालित्य प्रकट हुआ है उसके सामने ब्रजभाषा पानी भरती है।" यह व्यर्थ अभिमान की बात नहीं है। जो सज्जन बुन्देली लोक साहित्य का अध्ययन करेंगे वे इस तथ्य को स्वीकार किए बिना न रह सकेंगे।

श्रृंगार सुषमा

बुन्देलखंडी गीतों में श्रृंगार का विशेष महत्व है, मानो सौन्दर्य के उड़ते हुए पक्षी को अलंकारों द्वारा बाँधकर सोने के पिंजरे में रखने का प्रयत्न किया गया है। ब्रजभाषा के कवि अपनी नायिका के नूपुरों की मृदु झंकार सुनने के आदी हैं, पर यहाँ ईसुरी की बुन्देलखंडी नायिका के पैजनों के छमाकों का मजा तो लूटिये :—

चलतन परत पैजना छमकें, पाउँन गोरी धन के।
सुनतन रोम रोम उठ आवत, धीरज रहत न तन के।
छूटे फिरत गैल खोरन में, सुर मुख्तार मदन के।
करबे जोग भोग कछु नाते, लुट गए बालापन के।
ईसुर कौन कसाइन[1] डारे, जे ककरा[2] कसकन के[3]।

जब वह बुन्देली नायिका घर से निकलती है, तो उसके पैजनों के छमाकों से मुहल्ले के लोग चौंक उठते हैं। यही नहीं, वे बुरी तरह डर भी जाते हैं। उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगता है, मानो उन्हें तंग करने के लिए मदन महीपति के कारिंदे गली- खोरों में छूट पड़े हों। यह तो सभी जानते हैं कि नम्बरदार के कारिंदे गरीब किसानों को बेहद सताते हैं। ईसुरी ने गाँव का कैसा सजीव चित्र खींचा है। यह तो ठीक है, पर यह पता तो लगाओ कि वह कौन कसाई है, जिसने लोगों का सताने के लिये उसके पैजनों में ये कसक के कंकड़ डाल रखे हैं ?

देखिए, एक बुन्देली बाला अपने प्रसाधन कक्ष में बैठकर अपना कैसा

१ कसाइन = कसाई का बहुवचन। २ ककरा = कंकड़। ३ कसकन के = (कसकन, कसक का बहुवचन) कष्टों के आँसने वाले।

शृंगार कर रही है :—

अरन[1] में से ककई[2] लई बेलन[3] में तेल फुलेल।
पटियाँ पारी रे माथे पै जैसे नाग लहरिया लेय।
गुवो चुटीला[4] ऐसें रिरके[5] जैसे बामी में सरक जाय साँप।
माँग भर दई रे गोरी की जैसे गंगा की निकर जाय धार।
नाक नथुनियाँ नक बेसर सोने बेंदा लगो लिलार।
बिंदियाँ अनारन दमकन लगी, अनयारे[6] लटक रये बार।
सोने सींक सुरमा रचे जैसे बादर में उठे घन घोर।
दुहरी तिहरी पचलड़ियाँ गरे में पैरें टुकाउर हार।
साँप काँचरी ओढ़े चुनरिया, दे पै[7] रही झर्राय।
मुदरी जैसी करहा बनी मानो ढारी चतुर सुनार।

(गौने की विदा से)

इस गीत की उपमाएँ कैसी फबती हुई हैं। पटियों के लिए "नाग लहरिया", चुटीला की खिसकन के लिए "जैसे बामी में सरक जाय साँप", सुरमा के लिये "घनघोर घटा", माँग के लिए "जैसे गंगा की निकर जाय धार", चुनरिया की चमक तथा पारदर्शिता के लिए "साँप केंचुली" और कमर के लिए "मानो ढारी चतुर सुनार" उपमाएँ जितनी अभिनव तथा अनूठी हैं उतनी ही उपमानों की सजीवता भी दर्शनीय है।

अब इस नायिका की पटियाँ देखिए :—

देखो रजऊ खाँ पटियाँ पारें, सिर सबयार[8] उघारें।
मोतिन माँग भरी सेंदुर सें बेंदा देत बहारें।

---

१ अरन = आले का बहुवचन। २ ककई = कंघी। ३ बेलन = बेला, कटोरा, बहुवचन में। ४ चुटीला = गुथी चोटी। ५ रिरके = खिसके। ६ अनयारे = नोंकदार। ७ दे पै = देह पर। ८ सबयार = बिलकुल।

ठाड़ी हती टिकी चौखट सें सहजई अपने द्वारें ।
काम समर में सिर कटवे खाँ खोंसें दो तरवारें ।

'रजऊ' शब्द बुन्देली भाषा का एक मधुर और प्रेमपूर्ण सम्बोधन है, जो वर्तमान कविता की 'सजनी', 'रानी' आदि शब्दों की जगह प्रयोग में लाया जाता है । नीचे के पद्य में श्रीबृषभानु दुलारी की लमछारी लटों की शोभा देखिए :—

धरती धरैं लटैं लमछारीं, मनो नागनें कारीं ।
गुबवा रहीं छोरकें जूरो[1], करया[2] ऊपर डारीं ।
रुच सें गोये चुटीला चुटिया, रुच-रुच पटियाँ पारीं ।
ईसुर लखीं लगा कें ऐना, श्रीबृषभानु दुलारी ।

× × ×

कानन डुलें राधिकाजी के, लगें तरुकला[3] नीके ।
आनँद कंद चंद के ऊपर, दो तारागण झींके ।
परतन पसर परत गालन पै, तरें झूमका जीके ।
जिनके घर सें जो पैराव, और जनन ने सीके ।
श्याम सनेह ईसुरी देखत, ब्रजवासी बस्ती के ।

राधा ने कानों में तरुकला पहने हैं । वे ऐसे लगते हैं मानों चंद्रमा के ऊपर दो तारागण लटक रहे हों । कितनी सुन्दर कल्पना है ।

---

१ जूरो = बालों का जूड़ा । २ करया = कमर । ३ तरुकला = कर्णफूल के समान कानों में पहनने का एक जेवर जिसमें नीचे झुमके लटकते रहते हैं ।

पारिवारिक जीवन की झाँकी

एक स्त्री, जिसका पति रात्रि भर अपनी प्रेमिका के पास रहा है, उसके प्रातःकाल घर आने पर यह बुन्देली राधिका अपने मुरलियावाले पति को, देखो, कैसी करारी फटकार बतलाती है :—

ओई[1] घरे जाव मुरलिवारे, जहाँ रात रय प्यारे ।
अब आवे को काम तुमारो का है भवन हमारे ।
हेरें[2] बाट मुनैयाँ हू है, करें नैन कजरारे ।
खासी सेज सजाय महल में, दियला धरें उजारे ।
भोर भये आ गए ईसुरी, जरे पै फोला पारे ।

एक चतुर स्त्री की उस वेदना का अनुभव तो कीजिए, जिसका पति ठंडा है। वह धैर्य खोकर अपने भाग्य को कोसती हुई कह उठती है:—

सुगर नारि ठंडे पिया, रैन अकारथ[3] जाय ।
मुरगा पापी बोल दे, जो मुरदा उठ जाय ।
करम के पाँसे परे मोरे बालेमा ।

लगे हाथ 'दो गोरी के बालमा' की दशा भी देख लीजिए :—

नदी किनारे गोंदरा, लफ लफ दूनर होय ।
दो गोरी को बालमा, सूक बहेरो होय ।

(गायक—बदनसिंह बिचुवा)

---

१ ओई = उसी । २ हेरें = देखें । ३ अकारथ = व्यर्थ ।

त्रिफला के सूखे बहेरे को उपमा कितनी फबती हुई है।

× × ×

एक लड़की बुन्देलखंड के उस भाग में ब्याही गई है, जिसे डँगैया कहते हैं। इस क्षेत्र में ज्वार और महुआ ही अधिक होते हैं। उसकी शिकायत सुनिये :—

कायखों दई मोरे राम,
डँगैया में कायखों दई मोरे राम।
एक तो डँगैया में जुनरी को पीसबो,
दूजे लटन[1] सों काम। डँगैया में·········

एक उपेक्षिता बाला अपने पति से नजर भर देखने के लिऐ, उससे स्नेह-सम्बन्ध रखने के लिए प्रार्थना करती है। उसके अभाव में वह मर जाना श्रेयस्कर समझती है।

नजर भर हेरत[2] काय नैयाँ ?
हम तो राजा बन की हिरनियाँ,
बन की हिरनियाँ तुम ठाकुर के लरिका।
तुपक[3] तीर मारत काय नैयाँ ?
नजर भर हेरत काय नैयाँ ?

यह एक परकीया नायिका है। किसी परदेशी को रात बिलमाने के लिए, देखिए, कितना प्रलोभन दे रही है :—

जिन जैयो बिदेशी दिन थोरो।
दिन थोरो रे दिन थोरो।

---

१ लटन = (लटा) बहुवचन में। महुवा भूँजकर कूट के तिली मिलाया हुआ एक खाने का पदार्थ। २ हेरत = देखते। ३ तुपक = बंदूक।

थोरो जियन मुख न मोरो ।
ऊँचे अटा पै पलका बिछा दऊँ,
द्वार बाँध दऊँ जो घोरो ।
जिन जैयो विदेशी दिन थोरो ।

— 'मधुकर' से

नीचे लिखे गीत में एक गरीब किसान की कठिनाई का विवेचन किया गया है । फसल खराब आने के कारण उसे लगान चुकाना दूभर हो रहा है ।

हमारी कैसें चुकत तिहाई,[1]
मेंडन मेंडन हम फिर आये, डीमा देत दिखाई ।
छोटी छोटी बाल कढ़ी है, कूरा रश्रो फर्राई ।
माँतें[2] जिमीदार को आव बुलौवा, को आ करत सहाई ।
टलियाँ[3] बछियाँ साहु ने ले लईं, रै गई पास लुगाई ।

एक किसान बैल खरीदने बाजार जा रहा है । उसकी स्त्री, जिसे बैलों की पहिचान है, उसे कैसा बैल खरीदकर लाना चाहिए, इस सम्बन्ध में अपने अनुभव बता रही है :—

मोरे जात बजारे छैला, मोरे जात बजारे छैला लाल ।
सो लेन अनोखे बैला, मोरे जात बजारे छैला ।
कन्त बजारे जात हो, कामन[4] कह कर जोर ।
एक अरज सुन लीजियो, कहो मानियो मोर ।
लीला है रंग अति जबर जंग, औगन[5] न अंग एकऊ बाके ।

---

१ तिहाई = किस्त, लगान । २ माँतें = वहाँ से । ३ टलियाँ = दुबली पतली बुड्ढी गायें । ४ कामन = (कामिनी) स्त्री । ५ औगन = अवगुण ।

रोमा मुलाम[1] पतरो है चाम, चाहे लगें दाम कितनेहु बाके[2] ।
सो लियो असल पुखैला, मोरे जात बजारे छैला ।
धौरा रंग[3] बाकुड़ा चंचल ओछे कानन[4] खैला ।
मोरे जात बजारे छैला, मोरे जात बजारे छैला लाल ।
कजरा की शान ले लिए जान दे दियो दाम चित्त में दै कें ।
सो ओछे कानन खैला, मोरे जात बजारे छैला ।
पुठीउतार[5] घींच पतरी को न लैयो बगरैला[6] ।
करिया के दन्त, जिन देखियो कंत, हट चलो अंत,
मानो विनती ।
सींगन के बीच भोंयन दुबीच[7] भोंरी हो सो हुइये
असल परैला[8] ।
मोरे जात बजारे छैला, मोरे जात बजारे छैला लाल ।

(गायक—**रामप्रसाद नाई, देवरी**)

× × ×

कौना खों दईं बाबुल मढ़ा-अटारी,
कौना खों दईं परदेश, मोरे लाल ?
बीरन खों दईं बाबुल मढ़ा-अटारी,
बेटी खों दईं परदेश, मोरे लाल ।

---

१ मुलाम = मुलायम । २ बाके = उसके । ३ धौरा रंग = सफेद रंग । ४ ओछे कानन = उस नाटे को कहते हैं, जिसके चार दाँत तो पूरे निकल आये हों और दो दाँत निकल रहे हों अर्थात् नया नाटा । ५ पुठीउतार = पुट्ठे नीचे को उतरे । ६ बगरैला = बगर में चरने वाला, जंगल में छुट्टा रहनेवाला । ७ दुबीच = मध्य । ८ परैला = काम के समय बैठ जानेवाला ।

काय खों माता मोरौ जनम धरौ तो,
काय खों करीं पराईं, मोरे लाल ?
नाव करन खों बेटी जनम धरौ तो,
सुक्खन खों करीं पराई मोरे लाल ।

× × ×

सुक्ख तो माता मोय सपने में नैयाँ,
दुक्ख सजीवर हाँय मोरे लाल ।
कच्ची ईंट बाबुल देरीं न धरियो,
बेटी न दियो परदेश, मोरे लाल ।

× × ×

माता कयें बेटी रोजई अइयो ।
बाबुल कहें दोऊ जोर मोरे लाल ।
वीरन कहें वैना अवसर अइयो ।
भौजी कहे कौन काम मोरे लाल ।

× × ×

माता के रोयँ रोयँ नदिया भरत है ।
बाबुल के रोयँ सागर ताल मोरे लाल ।
बीरन के रोयँ रोयँ छतियाँ फटत है ।
भौजी को जियरा कठोर मोरे लाल ।

इस गीत में एक विवाहित लड़की अपने माँ-बाप और भाई-भौजाई के स्नेह का लेखा-जोखा तथा पैतृक सम्पत्ति के अधिकार की मीमांसा करती है। वह कहती है—"सुसज्जित मकान, अटा-अटारी तथा धन-भंडार सभी कुछ पिता ने भाई को दे दिया है और मुझे दूर परदेश में भेज दिया है। ऐसा विषम व्यवहार क्यों ?" बेटी माता से पूछती है—"हे माता, तूने मुझे क्यों जन्मा था और किस लिए मुझे पराई कर दी ?" माता उत्तर देती है—"नाम-धर्म के लिए तुझे पैदा किया था और सुख के लिए तुझे पराई की है।' पुत्री कहती है—"माता, मुझे सुख तो सपने

में नहीं है और दुख प्रत्यक्ष भोग रही हूँ। पिताजी, अब तुम कभी ऐसी कच्ची ईंट देहरी पर मत रखना और बेटी को कभी परदेश मत देना।"

पुत्रियों के प्रति माता-पिता, भाई-भौजाई का स्नेह किस प्रकार का रहता है, इसका दिग्दर्शन भी इस गीत में कराया गया है। बेटी जब ससुराल को जाने लगती है, तो माता कहती है, बेटी नित आया करना। भाई कहता है, बहन तीज-त्योहार को आना और भौजाई कहती है, अब तुम्हारे आने का यहाँ काम क्या है? अपने घर रहो और उसे सँभालो। भौजाई के हृदय की कठिनता समझ में आती है। वह एक सुदूर परिवार की लड़की होती है जो पतिगृह में आकर पति-परिवार से पूर्ण तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाती है। वह ननद के प्रति निर्मम हो सकती है, पर माता-पिता के हृदय का तो वह टुकड़ा है। वे उसके वियोग में रो-रो कर नदी-नाले भर देते हैं।

बुन्देलखंडी रसिकता

बुन्देली गीतों में रसिकता रग-रग में भरी हुई है। जहाँ प्रकृति की छटा नित्य नवीन दीख पड़ती हो, जहाँ ऊँचे-ऊँचे शिखर अपना मस्तक आकाश में उठाये खड़े हों, जहाँ शस्य-श्यामला भूमि लहराती हो, जहाँ विस्तृत झीलें, नदी, तालाब और निर्झर पग-पग पर हों, जहाँ विविध पक्षियों के कलरव से आकाश सदा गूँजता रहता हो और जहाँ वसंत वनश्री को निहारता हुआ ठिठक-ठिठक कर चलता हो, वहाँ के मनुष्यों में रसिकता न होगी तो क्या रेगिस्तान के प्राणियों में होगी! रसिकता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

मोरी कई[१] मान गैलारे[२], दिन डूबें जिन जा रे।
आगें गाँव दूर लौं नैयाँ, नईं चौकी नईं पारे[३]।
परने[४] होय तो ठौर बतादऊँ, रीते[५] डरे उसारे[६]।

---

१ कई = कही, कहना। २ गैलारे = राहगीर। ३ पारे = पहरे। ४ परने = ठहरने। ५ रीते = खाली। ६ उसारे = दहलान।

सास हमारी भोरी भारी, ससुर जनम के न्यारे।
कहत ईसुरी मजा मार ले, घरै नैयाँ घरबारे।

यह परकीया नायिका है। घर सूना देखकर परदेशी को बिलमाने के लिए भय और प्रीत दोनों दिखा रही है।

कैयो गोने जोग भईं छातीं, लिखो बलम खों पातीं।
हमखों देख हमारे दोरैं, उतरन लगे बिसाती।
बेंचन लगे कनक कजरौटी, टिकली सीस सुहाती।
मन राजा ने छोड़ो ईसुर, तन मुद्दई को हाती।

कोई मुग्धा नायिका अपनी सखी से कहती है—"मेरे प्रियतम को पत्र द्वारा सूचना दो कि मैं अब गौने योग्य हो गई हूँ। मेरे यौवन को देखकर मेरे द्वार पर बिसाती उतरने लगे हैं। अतः प्रियतम, मुझे शीघ्र लिवा ले जाओ, क्योंकि कामदेव राजा का हाथी अब मेरे वश का नहीं रहा है।" कैसी स्पष्टोक्ति है!

मिलतीं कबऊँ अकेली नैयाँ, बतकावे[1] खों गुइयाँ।
मिल जातीं मन की लै लेते, जो कछू हते कबैयाँ।
बाहर से भीतर खों कढ़ गईं, कुल्ल[2] लुगाइन मैयाँ।
ईसुर कात तुमारे लाने, ढूँढ़त कुआ तलैयाँ।

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से एकान्त में कुछ कहना चाहता है। इसके लिए उसने कुआँ-तलैयों के अनेक चक्कर लगाये पर वह सफल न हो सका। उसकी लालसा है कि वह कहीं अकेले में मिल जाती तो उससे दो-दो बातें हो जातीं—कुछ कह-सुन लेते।

---

१ बतकावे = बातचीत करने। २ कुल्ल = बहुत सी।

जो कउँ छैल छला हो जाते, तो उँगरन बिच राते[1]।
मौं पोंछत गालन सों लगते, कजरा देत दिखाते।
घरी घरी घूँघट खोलत में, नजर सामने राते।
मैं चाहत ती लख में[2] बिदते,[3] हाँत जहाँ खों जाते।
ईसुर दूर दरस के लाने, ऐसे काय[4] ललाते[5]?

अपने प्रेमी के दर्शन की प्यासी एक नायिका अपने प्रियतम को छल्ला बनाकर उँगलियों में पहने रहने की कामना करती है; जिससे मुँह पोंछते, काजल लगाते, घूँघट खोलते और हाथों को इधर-उधर करते समय हमेशा वह उसकी नजरों के सामने बना रहे। कैसी मधुर कल्पना है।

अँधयारी है रात, अँधयारी है रात,
बिन्नू को बूँदा दमक रव।
सपने में दिखाय, सपने में दिखाय,
पतरी कमर बूँदाबारी हो।

(गायक—बदनसिंह बिचुवा)

किसी उन्मत्त प्रेमी के मन में उसकी प्रेमिका को अँधेरी रात में चमकनेवाला बूँदा बस गया है। वह ऐसा तद्गतमना हो रहा है कि उसे सपने में भी वही—'पतरी कमर बूँदाबारी' ही नजर आती है।

हमखाँ बिसरत नईं बिसारी, हेरन[6] हँसन तुमारी।
जुबन विशाल चाल मतवारी, पतरी कमर इकारी[7]।

---

१ राते = रहते। २ लखमें = देखने में। ३ बिदते = लक्ष्य में रहना। ४ काय = क्यों। ५ ललाते = लालायित रहते। ६ हेरन = देखना। ७ इकारी = इकहरी।

भौंह कमान बान से तानें, नजर तिरीछी मारी।
ईसुर कात हमारी कोदों[1] तनक हेर लो प्यारी।

उसकी हेरन-हँसन में वह जादू है कि एक बार सिर पर चढ़कर कभी उतरना भी नहीं जानता। फिर उसका तीर कमान भी बाँक है। उसके लक्ष्य से क्या कोई बच जाय ?

जो तन बाग बलम को नीको, सिचो सुहाग अमी को।
श्रीफल फरे धरे चोली में, मदरस चुँअत लली को।
लेत पराग अधर पै मधुकर, विकसी कमल कली को।
ईसुर कात बचायें रइयो, छुए न छैल गली को।

कोई युवती अपने शरीर को 'बलम का बाग' घोषित करती है। सच-मुच में इस 'बलम के बाग' ने कश्मीर के 'निशात बाग' को मात कर दिया है। यह बहुत अजूबा बाग है। ऐसे बाग की सैर के लिए किसका मन लालायित न होगा ? पर उसके सौन्दर्य तथा पवित्रता की रक्षा के लिए उसकी गली के छैलों से रक्षा करना नितान्त आवश्यक है।

रातें परदेसी सँग सोई, छोड़ गओ निरमोई।
अँसुवा ढड़क परे गालन पै, जुबन भींज गए दोई।
गोरी तन की चोली भींजी, दो दो बार निचोई।
ईसुर परी सेज के ऊपर, हिलक हिलक मैं रोई।

परदेशी तो निर्मोही हुआ ही करते हैं। उसके वियोग में बेचारी को जो दुख उठाना पड़ा, उसकी उसे क्या खबर ?

---

१ कोदों = ओर, तरफ।

हास्य रस

हास्य से मनोरंजन तो होता ही है, परंतु उच्च श्रेणी का हास्य मनुष्य को हवाई कल्पना के झूठे स्तर से उतारकर सत्य के चरणों में लिटा देता है। आलोचना और कटाक्ष में समाप्त होनेवाला हास्य अधूरा है। सहानुभूतिपूर्वक रास्ता दिखाना भी उसका काम है। हमारे भारतीय साहित्य में हास्य को कभी कोई विशेष स्थान नहीं मिला है, परंतु हमारे बुन्देली साहित्य में उसकी झलक सर्वत्र दिखाई देती है। लोकगीतों का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है, जहाँ हास्य की पुट न दी गई हो। नीचे कुछ गीतों में उसका दिग्दर्शन कराया गया है।

काए राजा ! मुख डारो रुमाल, ढाई बरस के बालेमा ।
ढाई बरस के बालेमा, बिल्लू लै गई चुराय ।
काए राजा, मुख डारो रुमाल ।
सासू जो ढूँढे, ननदिया ढूँढे, मोरी ढूँढे बलाय ।
ढाई बरस के बालेमा, बिल्लू लै गई चुराय ।
काए राजा, मुख डारो रुमाल ।
सासू जो रोबे, ननद मोरी रोबे, मोरी रोबे बलाय ।
ढाई बरस के बालेमा ।
कुठवा जो ढूँढो, अटरिया जो ढूँढी, खटिया तरें दुके बालेमा ।
ढाई बरस के बालेमा, बिल्लू लै गई चुराय ।

(गायिका—रामबाई जसोंदन)

कैसी गजब की बात है, किसी युवती के ढाई वर्ष के बालम को बिल्ली चुरा ले गई ! अरे भाई ढूँढ़ो, कहाँ ले गई वह ? बालम की माँ–बहन तो उसे ढूंढ़ रही हैं और पता न चलने पर घबड़ाकर रोती भी

हैं पर यह उसकी दुलहिन क्यों चुप बैठी है, मानो उसका कुछ गया ही नहीं ? वह कहती है, ढूंढ़े मेरी बला। अंत को वह भी उठी। उसने कोठा ढूंढ़ा, अटारी पर जाकर यहाँ-वहाँ तलाश किया, तो क्या देखती है कि बालम खटिया के नीचे दुबके पड़े हैं !

इधर देखिए, कचरिया का ब्याह हो रहा है। मूला दूल्हा बना है और दुनियाँ भर के भटा, तूमा, केला, करेला, कद्दू बराती बने हैं। विवाह दर्शनीय है।

कचरिया तोरो ब्यावरी खरबूजा नेवते अइयो।
मूला दूला भटा बराती चिरपोटा सज ल्यइयो।
सजी गड़ेलू बजे तूमरा, कुम्हड़ा ढोल बजैयो।
चलें फटाका आतिशबाजी गुइयाँ आन चलैयो।
केरा करेला भये मामाजू, कैथा ससुर बुलैयो।
सैमें घुइयाँ भईं गौरैयाँ, मिरचें दौड़ लगैयो।
पँव पखरई में डँगरा कन्यादान कलींदो दैयो।
परियो सकारें उठियो अबारें दुफरे चौका लगैयो।
मोंड़ा मोंड़ी माँगे कलेबा दो घूँसा दै दैयो।

एक फूहड़ स्त्री का हाल भी सुनिये। वह देखने में तो बहुत सुन्दर है, पर व्यवहार तथा घर-गृहस्थी के कामों से अनभिज्ञ है।

रेंहटा करैं न पोनी, देखत की नोनी।
रायते में खूब नौन मसक दव भुँजिया धरी है रोनी। देखत...
गाय भैंस के लिंगई नै जाबें, तनक करै न दोहनी। देखत...
भर भर टाठी महेरी मसकें, ऐसी मती[1] अनहोनी। देखत...

---

१ मती = मुटानी, मस्त हुई।

रो रो अपने कहै पिया सों, बनवा दो करधौनी। देखत...
चोखी चाँदी को जेवर गढ़ा दो, मैके जैहे पठौनी। देखत...

(गायिका—रामबाई असोंदन, देवरी)

वृद्धावस्था की दुर्दशा का अवलोकन कीजिए। इसको सुनकर प्रौढ़ जन आगे आनेवाली वृद्धावस्था का खयाल करके अवश्य चौंक उठेंगे।

डुकरा तोखों मौत कितऊँ नैयाँ।
डुकरा की खाट मरेला[1] में डारी।
मरेला के भूत लगत नैयाँ।
डुकरा की खाट बमीठे पै डारी,
करिया नाग डसत नैयाँ।
डुकरा तोखों मौत कितऊँ नैयाँ।
डुकरा की खाट मड़ैया में डारी,
टूट बड़ेरा[2] गिरत नैयाँ।
डुकरा की खाट नदी पै डारी।
आउत नदी बहत नैयाँ।
डुकरा तोखों मौत कितऊँ नैयाँ।

(गायक—रामप्रसाद नाई, देवरी)

---

१ मरेला = श्मशान। २ बड़ेरा = मोटी लकड़ी, जो मलगों को थामे रहती है।

प्रकृति-निरीक्षण

बुन्देली लोक-साहित्य में ऋतु, बारहमासी आदि के वर्णन में प्रकृति-निरीक्षण सम्बन्धी अनेक गीत पाये जाते हैं। उनमें ऋतु तथा प्रकृति वर्णन के साथ-साथ गृह-विज्ञान, औषधि-विज्ञान तथा जीवन सम्बन्धी अनेक बातों के प्रचुर अनुभव कहे गए हैं। नीचे में कुछ गीतों का उल्लेख करके बतलाऊँगा कि बुन्देलखंडी स्त्रियाँ चलते-फिरते जिन गीतों को जोड़ लेती हैं, उनमें प्रकृति-निरीक्षण की कितनी गहरी छाप रहती है।

देखिए, वसंत ऋतु का कैसा सजीव चित्र खींचा गया है :—

अब रित आई बसंत बहारन, पान फूल पतझारन।
तपसी कुटी कंदरन माहीं, गई बैराग बिगारन।
हारन हद्द पहारन अगरन, धाम धवल जल धारन।
चाहत हती प्रीत प्यारे की, हा हा करत हजारन।

वसंत की बहार वन, पर्वत, खेत-खलिहान, नदी की धाराओं और धवल धामों में सर्वत्र फैल गई है। पहाड़ की गुफाओं में छिपे हुए साधु भी तो उसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे। वह बहार उनके वैराग्य को बिगाड़ने के लिए वहाँ भी जा पहुँची।

गाड़ी बारे मसक दै बैल, अबै पुरवैया के बादर ऊन आए।
कौना बदरिया ऊनई रसिया, कौना बरस गए मेह।
अबै पुरवैया के बादर ऊन आए।
अग्गम बदरिया ऊनई रसिया, पच्छम बरस गए मेह।
घुँघटा बदरिया ऊनई रसिया, गलुआ बरस गए मेह।
अबै पुरवैया के बादर ऊन आए।

(गायक—बदनसिंह, बिचुवा)

पुरवाई हवा से बादल आकाश में छा गए हैं। इस बुन्देली बाला को इस बात का ज्ञान है कि पुरवाई हवा चलने पर पानी शीघ्र बरसता है। इस कारण वह अपने गाड़ीवान को ताकीद करती है—"बैलों को जल्दी दौड़ाओ, पानी आनेवाला है।" पर बादल भी तो बड़े हठी हैं, इतनी भगदड़ करने पर भी उसके घूँघट पर उनहे बादल उसके गलुओं पर बरस ही गए!

चैत चितै चहुँ ओर रही मैं हारी।
वैसाख न लागी आँख बिना गिरधारी।
जेठ चलै अति पवन गरम अधिकारी।
असढा में बोली मोर सोर भओ भारी।
साउन में बरसे मेह जिमी हरियानी।
भादों की रात डराउन, झुकी अँधयारी।
कुँवार में करे करार अधिक गिरधारी।
कातक में आये न श्याम सोच भव भारी।
अघन में भओ अँदेश मोय दुख भारी।
पूष में परत तुषार भींज गई सारी।
माव मिले नँदलाल देख छवि हारी।
फागुन में पूरन काम भये सुख भारी।

(गायक—धर्मसिंह काछी, देवरी)

इस बारहमासी में पति-आगमन की प्रतीक्षा के साथ-साथ मास तथा ऋतु सम्बन्धी प्रभावों का वर्णन भी किया गया है।

हम पै बैरिन बरसा आई।
हमें बचा लेव माई।

चढ़ कें अटा घटा ना देखें, पटा देव अँगनाई ।
बारादरी दौरियन में हो, पवन न जावे पाई ।
जे द्रुम कटा छटा फुलबगियाँ, हटा देव हरयाई ।
पिय जस गाय सुनाओ ईसुर, जो जिय चाव भलाई ।

यह स्वकीया विरहिणी नायिका है। पति के विरह में वर्षा ऋतु उसे बैरिन-सी प्रतीत होती है। इसलिए, वह उससे बैरी जैसा व्यवहार करना चाहती है। वर्षा के सभी सुख तथा मंगलदायक उपादानों को वह हटा देना चाहती है। वह तो उसीको अपना हितू मानती है जो उसे उसके पिया का यश सुनाए।

सदा तुरैया फूलें नहीं, सदा न साहुन होय ।
सदा नै कंता रन खों चढ़ें, सदा न जीवे कोय ।
असढ़ा तो गरजे अब सहुना लागे बन में कुहुँक रईं मोर ।
बीरन लुवौआ अब आये नहीं, मोरो साँय साँय जी होय ।

(गायक—काशीराम काछी, देवरी)

अपने भाई के आगमन की प्रतीक्षा में आषाढ़-श्रावण मास के प्राकृतिक सौन्दर्य का कैसा मनोहर चित्र खींचा है।

कन्हैया बिना कौन हरे मोरी पीरा ।
असाढ़ मास घन गर्जन लागे, सहुना गगन गँभीरा ।
भादों में नभ बिजली चमके, जो मन धरत न धीरा ।
कुँआर मास की छुटक चाँदनी, कातक निर्मल नीरा ।
अघन मास में बोनी हुइये, जो तन धरत न धीरा ।
पूस मास में ठंड जो व्यापे, माव में हलत शरीरा ।

फागुन में हरि होरी खेलें, कौन पै छिटकें नीरा ।
चैत मास बन टेसू फूले, बैसाखे रनधीरा ।
जेठ मास की खरीं दुपरियाँ, व्याकुल होत शरीरा ।

(गायक—धर्नसिंह काछी, देवरी)

धार्मिक गीत

भजन शब्द ईश्वर-स्मरण का बोधक है। इसी कारण वे निर्गुण तथा सगुण उपासना परक होते हैं। गाँव में सभी जातियों के लोग इकट्ठे होकर किसी स्थान विशेष या देवी देवताओं के स्थानों पर गाते हैं। वे ढोलक, खँजरी तथा तारों के स्वर के साथ गाये जाते हैं। गाने की तर्ज तथा स्वर-भेद से वे रमटेरा, ठेका, मंगला, चौधारा आदि कई प्रकार के होते हैं। स्त्रियाँ भी भजन गाती हैं। पर उनके भजन अन्य तरह के होते हैं। वे भजन गाने में बाजों का उपयोग नहीं करतीं। ये भजन कार्तिक स्नान, तुलसी पूजन, आदि धार्मिक अवसरों पर गाये जाते हैं। नीचे स्त्रियों के कुछ भजन लिखे जाते हैं।

भजन

वन में चलते-चलते जब सीताजी थक जाती हैं, तो लक्ष्मणजी से कहती हैं :—

धीरें चलो मैं हारी लछमन, धीरें चलो मैं हारी।
एक तो हारी दूजे सुकमारी तीजे मजल की मारी।
सकरीं गलियाँ काँट कटीली फाटत है तन सारी।
गैल चलत मोय प्यास लगत है दूजे पवन प्रचारी।
धीरें चलो मैं हारी लछमन, धीरें चलो मैं हारी।

सीता को ले आने जैसे छोटे काम के लिए श्रीरामचन्द्रजी को लंका में भटकाने के कारण वीरमाता अंजना, देखो, हनुमान जी को कैसी फट-

कार बतला रही हैं।

तैने मोरो दूध लजायो पवन सुत, तैने मोरो दूध लजायो।
होतऊँ सें सूरज खों लीलो, लाला जग कर डारो अँधयारो।
देवन जाय करी जब बिनती भैया देवन कष्ट निवारो।
काहे खों सजी हैं रीछ बँदरियाँ, काहे खों कटक सजायो।
सात समुन्दर तुमने नाके, काहे खों सेत बँधायो।
मारी उचाट सूरज खों लीलो, बो बल कहाँ गमायो।
लंका बात तनक सी कहिये, रामचन्द्र भटकायो।
वोलों नै मारो मोरी माता अंजनी, सेंट पियन नहिं पायो।
तुलसीदास आशा रघुवर की हरि चरणों चित लायो।

(गायिका—लेखक की पत्नी)

स्त्रियाँ कार्तिक स्नान के लिये जा रही हैं। वे सब मिलकर भक्ति-भाव के साथ गाती हैं :—

सखी री में तौ भई नै बिरज की मोर।
काहाँ रहती काहा चुनती काना करत किलोल।
बन में रहती, बन फल खाती बनई में करत किलोल।
उड़ उड़ पंख गिरें धरती में बीने जुगल किशोर।
मोर पंख को मुकट बनाओ बाँदे नंद किशोर।

रसखान के 'जो पशु हों तो कहा वश मेरो चरों नित नंद की धेनु मझारन' के समान इस गीत की सखियाँ भी व्रज की मोर होने की आकांक्षा रखती हैं। भक्ति रस की कैसी सरिता बहाई है।

हमें छोड़ काँ जाव ब्रजवासी ।
जो तुम हमें छोड़ हरि जै हो ।
तज डारों प्रान गरे डारों फाँसी ।
मोर मुकट हरि खों अधिक बिराजे ।
सो कलियन बीच बिहारी जू की झाँकी ।
नैनन सुरमा हरि के अधिक बिराजे ।
सो भोंयन बीच बिहारी जू की झाँकी ।

श्रीकृष्ण के प्रेम में सखियाँ कैसी तद्गतप्राणा हो रही हैं कि उनके वियोग को क्षण भर भी नहीं सहन कर सकतीं । कृष्ण-वियोग होते ही वे अपने प्राण त्यागने—फाँसी लगाकर मर जाने को तैयार हैं ।

दुबिधा कब जैहे जा मन की ।
इन पाँउन परकम्मा देऊँ छाया गोवरधन की ।
जब नँदरानी गरभ सें हुइयें आस पुजै मोरे मन की ।
जब मोरो काना कलेऊ माँगे, दध माखन अरु रोटी ।
जब मोरो काना झगुलिया माँगे, रतन जटत की टोपी ।
जब मोरो काना खिलौना माँगे, चंदा सूरज की जोड़ी ।

(गायिका—ब्रजरानी गौतम, देवरी)

इस गीत में सूरदास के समान वात्सल्य रस की पुट तथा कोमल कान्त भावों की अनोखी छटा दिखाई देती है । गृहस्थी के चिर आकांक्षित परम धन शिशु की प्राप्ति की कामना को "जब नँदरानी गरभ से हुइएँ, आस पुजै मोरे मनै की" द्वारा कितनी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया गया है ।

भगतें

भगतें देवी की आराधना के समय गाई जाती हैं। विशेषतः चैत्र और कुआँर की नवदुर्गा के समय जब जवारे रखे जाते हैं, नित्य भगतें गाई जाती हैं। इसके सिवा जब किसीके घर में बच्चों को माता निकलती हैं या गाँव में मोतीझिरा, हैजा आदि का प्रकोप होता है, तब भी लोग माता की मानता के लिए भगतें गाते हैं। जवारे लोगों के घर पर या देवी की मढ़िया में रखे जाते हैं। प्रतिपदा के दिन मिट्टी के घड़ों पर मूँज या काँस की मोटी कुड़री डालकर उस पर गेहूँ या जौ बोते हैं। ये खप्परों में भी बोये जाते हैं। इन्हें जवारे कहते हैं। यह नाम जौ या जवा पर से पड़ा है। जिस स्थल पर जवारे बोये जाते हैं, उस स्थल पर प्रथम दिन से ही नित्य रात के समय लोग भगतें गाने को इकट्ठे होते हैं। जवारों की जगह अखंड दीप जलता रहता है। नित्य देवी की पूजा की जाती है। नवमी के दिन बड़े समारोह के साथ जवारे सिराये जाते हैं। स्त्रियाँ जवारों के घटों को सिर पर रखकर चलती हैं। साथ में भगतें गानेवालों की टोलियाँ, भाव खेलनेवाले, निशानवाले तथा दर्शकगण चलते हैं। पंडा तथा अन्य गुनियाँ हाथ में बड़े-बड़े त्रिशूल लिये रहते हैं, जिसे वे चलते समय अपने दोनों गालों में छेद लेते हैं। इसे बाना पहनना कहते हैं। जुलूस देवी की मढिया पर पहुँचता है। पूजन तथा आरती होने के पश्चात् जवारे जुलूस के साथ नदी या ताल ब पर ले जाकर सिरा दिये जाते हैं। भगतें ढोलकी तथा तारों के स्वर के साथ गाई जाती हैं। स्त्रियाँ भगतें गाते समय बाजों का उपयोग नहीं करती हैं। नीचे दो भगतें लिखी जाती हैं :—

मोरी मैया पत राखियो बारे जन की।
मैया के मढ़ में चम्पो घनेरो वास भई फुलवन की।

मैया के मढ़ में गौएँ घनेरी पौद बढ़ी बछड़न की।
मैया के मढ़ में बहुएँ भौत हैं, भीर भई लरकन की।
मैया के मढ़ में धाम लगी है, वास भई घी गुर की।

नीचे एक ऐसी भगत लिखी जाती है, जिसमें एक गाय ने अपनी सत्यता के प्रभाव से हिंसक सिंह को अहिंसक बना दिया था।

दिन की ऊँगन किरन की फूटन सुरहिन बनखों जाँय हो माँ।
इक बन चालीं दुइ बन चालीं तिज बन पौंची जाय हो माँ।
कजली बन में चँदन हरे बिरछा, उत सुरहिन मौं डारो हो माँ।
इक मौं घालो दुज मौं घालो तिज मौं सिंघा गुंजार हो माँ।
अब की चूक बगस बारे सिंघा बछला दूध पियाउँ हो माँ।
को तोरो साखी सुरहिन गौवा, को तोरी देत जमान हो माँ।
चंदा सूरज मोरे साख सखनियाँ, बिरछा देत जमान हो माँ।
इक बन चालीं दुज बन चालीं तिज बन आन रम्हानी हो माँ।
उत की चालीं खिरकन आईं बछले शब्द सुनाव हो माँ।
आओ आओ प्यारे बछनवा सिंघा बचन हार आई हो माँ।
हारे दुधवा न पियों माया चलों तुमारे संग हो माँ।
आगे बछला पीछूँ सुरहिन दोई मिल बन खों जायँ हो माँ।
इक बन चालीं दुज बन चालीं तिज बन पौंचीं जाय हो माँ।
उठ उठ देखे बन को सिंघा सुरहिन अबहुँन आई हो माँ।
वचन की बांधी सत्य की साँची एक सें गई दो सें आईं हो माँ।
पैलऊँ मामा हमखों भख ले पीछूँ हमारी माय हो माँ।

कौने भनेजा तोय सुधबुध दीनी कौन लगो गुर कान हो माँ ।
देवी जालपा सुधबुध दीनी वीर लँगर लगे कान हो माँ ।
जो कजली बन तोरो भनेजा छुटक चरो मैदान हो माँ ।
सौ गऊ आँगे सौ गऊ पाछें होव बगर के साँड हो माँ ।

(गायिका—हीराबाई, खैरा, वर्तमान में देवरो)

सूर्य उदय हो रहा था, किरणें फूट रही थीं । इसी समय एक गाय वन को चरने निकली । एक वन चली, दूसरा चली और तीसरे कजली वन में जा पहुँची । कजली वन में चंदन के हरे वृक्ष हैं । वहाँ उसने चरने को मुँह डाला । एक मुँह मारा, दूसरा मारा, तीसरा मुँह घालनेवाली थी कि सिंह दहाड़ उठा । फिर वह सामने आ गया । गाय बोली—"इस बार की चूक माफ कर दो बारे सिंह, घर में छोटा बच्छा है, उसे दूध पिला आऊँ ।" सिंह बोला—"तू वापस आ जायगी, इसका कौन साक्षी है और कौन जमानतदार होता है ?" गाय बोली—"वन के वृक्ष जमानतदार हैं और चंदा-सूरज साक्षी हैं ।" सिंह मान गया । गाय चली और खिरका में आकर जोर से रम्हायी । शब्द बच्छे ने सुना । घर पहुँचकर गाय बोली—"बेटा, आ, मेरा अंतिम बार दूध पी ले, मैं सिंह को वचन हार आई हूँ ।" बच्छा बोला—"माँ, वचन हारा दूध नहीं पीता । मैं तेरे साथ चलूँगा ।" आगे-आगे बच्छा और पीछे-पीछे गाय चली । इधर गाय के आने में विलम्ब देखकर सिंह उठ-उठकर देखने लगा । उसने देखा, सत्य की साँचो और वचन की बँधी हुई गाय आ रही है । अकेली गई थी, अब बच्छे को लेकर, दो होकर आ रही है ! पास आते ही बच्छा बोला—"मामा, पहले मुझे खा लो, पीछे मेरी माँ को खाना ।" सिंह आश्चर्यचकित होकर कहने लगा—"ओ भानजे, यह बुद्धि तुझे किसने दी और कौन गुरु तुम्हारे कान लग गया ?" बच्छा बोला—"देवी जालपा ने मुझे बुद्धि दी है और लँगड़े वीर (देवी

के सेवक) ने मेरा कान फूंका है।" सिंह प्रसन्न हो गया। सत्य के समक्ष उसकी हिंसक वृत्ति पराजित हो गई। वह कहने लगा—"भानजे, यह कजली वन आज से तेरा हुआ। निश्चिन्त होकर खूब चरो। एक सौ गायें तुम्हारे आगे रहें और एक सौ पीछे। तुम बगर के साँड बनो।"

भोला के गीत

भोला के गीत इस प्रान्त में बहुधा तीर्थ यात्रा के समय गाये जाते हैं। मालूम होता है कि इसका प्रचलन उस समय हुआ होगा, जब भारत में रेल का जन्म नहीं हुआ था। लोग टोलियाँ बनाकर पैदल ही रामेश्वर, जगदीश और बद्रीनारायण की यात्रा करते थे। रेल के अभाव में आज भी बुन्देलखंड के यात्री जागेश्वर, कुंडेश्वर और नर्मदा जी की पैदल यात्रा करते हैं। ये पैदल यात्री ही रास्ता चलते समय भोला के गीत गाते हैं। यात्री स्त्री-पुरुषों की दो टोलियाँ बना लेते हैं और बारी-बारी से गाते जाते हैं। कभी-कभी प्रश्नोत्तर भी चलते हैं। इन गीतों की रचना क्रमबद्ध छन्दों में नहीं होती, विषय भी स्फुट हुआ करता है; तो भी सरल देहाती शब्दों में गाये जानेवाले ये गीत ग्रामीण जनता के धार्मिक भावों को जागृत करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इन गीतों द्वारा अनेकों प्रेमी-प्रेमिकाओं को अपने चिर संचित भावों को व्यक्त करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। इन गीतों में धर्म और श्रृंगार रस की अपूर्व धाराओं का संगम होता है। एक ओर धर्म की जान्हवी बहती है, तो दूसरी ओर श्रृंगार की कालिन्दी अपनी सुधा-माधुरी से श्रोताओं के मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। ये गीत अपनी मिठास और स्फूर्ति से स्रोताओं के हृदय को उल्लसित कर देने की शक्ति रखते हैं। ये गीत दो प्रकार के होते हैं। एक तो एक ही पद का होता है और दूसरा दोहे के रूप में।

नीचे उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

पहला प्रकार

(१) गनेश देव गजराखों बिरजेरी, गजराखों बिरजे वे
तो ठाड़े मलनियाँ के दोर री, गनेश देव हो……ओ
(२) भजन बोलो सिया रघुवर के रे, सिया रघुवर के रे भज-
नई में लगा दो बेड़ा पार हो, भजन बोलो हो……ओ
(३) कुँवर दोई राजा दशरथ के रे, राजा दशरथ के रे, वे तो
ऊबे जनक जू की पौर रे, कुँवर दोई हो……ओ
(४) भजन बिना सूनी देहिरा रे, सूनी देहिरा रे, हिरद में
बसा लो सीताराम हो, सुरत मोरी तोहि सों लगी हो।
(५) नरबदा उल्टी तो बहें रे, उल्टी तो बहें गंगा जमना
बहें सूदी धार रे, नरबदा हो……ओ।

दूसरा प्रकार

इसमें किसी भी दोहे के पहले और तीसरे पद में 'मोरे प्यारे' 'मोरे भैया' आदि लगाकर गीत बना लिया जाता है।

(१) राम नाम सुमरो नहीं रे मोरे प्यारे
करौ न हरिसों हेत।
वे नर ऐसे जायँगे मोरे भैया।
ज्यों मूली को खेत रे। भजन करो हो ……ओ
(२) राम नाम कहबू करो रे मोरे प्यारे
जब लौं घट में प्रान।
कबहुँक दीन दयाल के रे मोरे भैया
झनक परेगी कान। भजन करो हो ……ओ

नीचे के गीत में एक भक्त की उस व्याकुलता का अवलोकन कीजिए जो अपने पुरा-पड़ोसियों को तीर्थ यात्रा की तैयारी करते देखकर भक्ति भावना से प्रेरित होकर उनके साथ तीर्थ को जाना चाहता है, पर साधन न होने से नहीं जा सका है।

देहरिया तो दुर्लभ भई रे मोरे प्रभु, अँगना भये हैं विदेश।
माई बाप बैरी भये रे स्वामी, लै चलो अपने देश।
लगन तो लागी हो......ओ......

कोई भक्त तीर्थ जाने को तैयार था। इसकी खबर उसकी पड़ोसिन को लगी, तो वह अपना घर का काम छोड़कर उसके साथ जाने को तैयार हो गई। उसकी लगन देखिए :—

पीसत छोड़े पीसने[1] रे मोरे प्यारे, चुरत चनन की दार।
बारे छोड़े पालने रे भैया, और कुटुम परवार।
निकर आई दै टटिया[2] हो, स्वामी तोरी कठिन है महूम[3]।
चले चलो हो......ओ......

शृंगार रस

मिलन खों बैयाँ फरकें रे, बैयाँ फरकें रे दरस खों तरस
रहे दोऊ नैन रे...बलम मोरे हो......ओ......

प्रश्न

बलम से मोरी काहा बिगरी रे, काहा बिगरी रे मोरी
कतरी[4] सुपारी नै खाँय रे...बलम मोरे हो......ओ

---

१ पीसने = (पीसनो) आटा। २ टट्टिया = फाटक, किवड़िया। ३ महूम = उमंग, उत्साह, लगन। ४ कतरी = काटी हुई।

उत्तर

बलम सें तो कछु नईं बिगरी रें, कछू नईं बिगरी रे
मोरे सौतन ने भर दये कान रें···गोरीधन हो·····ओ

हास्य

बननियाँ बगवा[1] ब्यानी रे, बगवा ब्यानी वा तो
सारे बनियाँ खों धर धर खायरे···बननियाँ हो।

स्फुट

बरस जा दो बुँदियाँ रे···ए···ए
दो बुँदियाँ रे मोरे कंता घरईं रह जायँ,
बरस जा हो···ओ···ओ···

(२)

सुदिन दिन कब हुई है रे
कब हुई है रे, जब भेटों ननदिया तोरे वीर हो
सुदिन दिन हो··ओ···ओ

(३)

कजरवा तो थोरो दओ रे···ए···ए
थोरो दओ रे तोरे ऊँसईं
लगनियाँ हैं नैन रे, कजरवा हो···ओ··ओ

---

१ बगवा = बाघ।

(४)

दरश की बेरा भई रे···ए···ए···ए
अरे बेरा भई रे पट खोलो
छबीले भैरों लाल हो, दरश की हो···ओ···ओ

(५)

बमुरिया[1] के काँटे न सालें री···ई···ई
काँटे न सालें जैसे सालें,[2]
ननदिया के बोल रे, बमुरिया हो···ओ···ओ

(६)

ननद बाई सगुन तो धरौ रे···ए···ए
सगुन धरौ रे, कब आहें तुमारे राजा वीर हो
ननद बाई हो···ओ···ओ

(गायक—भगवानदास मिश्र
जमनाबाई)

---

१ बमुरिया = बबूल का छोटा झाड़। २ सालें = कसकें, दुख देवें।

मौसम तथा श्रमदान के गीत

कार्तिक-पुरुषोत्तम मास स्नान के गीत

प्रतिवर्ष कार्तिक मास तथा जब पुरुषोत्तम मास पड़ता है तब स्त्रियाँ एक माह तक नित्य उषा-काल में नदी, तालाब आदि को स्नान करने जाया करती हैं। उस समय वे जो गीत गाती हैं, वे कार्तिक के गीत कहलाते हैं। ये गीत बहुत भावपूर्ण रहते हैं। इनमें हृदय को स्पर्श करने की सहज शक्ति रहती है। वे प्रेम का चिरन्तन संदेश सुनाते हैं। राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर देहाती कवियों ने असंख्य गीत बनाये हैं। स्त्रियाँ जब इकट्ठी होकर स्नान करने जाती हैं, तो उनके कलकंठ से मुहल्ला गूंज उठता है।

सूरदासजी ने श्रीकृष्ण की मुरली के विषय में अनेक ललित पद लिखे हैं। सूर के कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनकर सारी प्रकृति स्तंभित रह जाती है। पर यहाँ किसी देहाती अपढ़ कवि के कृष्ण की मुरली की टेर भी अपना कम प्रभाव नहीं रखती है। यहाँ मुरली की टेर सुनकर राधा का अचकना देखिए :—

सुन मुरली की टेर अचक रईं राधा,
सुन मुरली की टेर।
होत भोर राधा पनियाँ खों निकरीं
गौअन ढिलन की बेर।

छोड़ो कन्हैया प्यारे बाँह हमारी,
हम घर सास कठोर ।
कहा करै सास कहा करै ननदी,
चलो कदम की ओट ।

—"मधुकर" से

श्रीकृष्ण जी द्वारका में अपने महल में रुक्मिणी जी के पास बैठे हैं। उन्हें सहसा अपनी जन्मभूमि व्रज की याद आ जाती है। वे रुक्मिणी से कहते हैं :—

सखी री मोय ब्रज बिसरत नैयाँ ।
सोने सरूपे की बनी द्वारका,
गोकुल कैसी छब्र नैयाँ । सखी री मोय······
उज्ज्वल जल जमुना की धारा,
बाकी भाँत जल नैयाँ । सखी री मोय······
जो सुख कहिये माय जसोदा,
सो सुख सपने नैयाँ । सखी री मोय······

कवि ने अपने सीधे-सादे शब्दों में मातृभूमि के प्रति कितना उत्कट प्रेम दर्शाया है। द्वारका भले ही सोने की बनी हो, पर वह जन्मभूमि के साधारण मिट्टी के बने घरों की सुन्दरता के समक्ष सदा फीकी ही जँचेगी। मैया की गोद में जो सुख लूटा है, वह तो त्रिलोक में भी दुर्लभ है। जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

इधर दूसरी ओर स्नान करके लौटी हुई स्त्रियों का एक झुंड आ रहा है। सुनिये, वे क्या गा रही हैं :—

नेक पठै दो गिरधारी जू को मैया ।
जे गिरधारी मोरे हिरदें बसत हैं ।

सो उनईं के हात लगे मोरी गैया।
इतनी सुनके जसोदा मुसक्यानी।
जाओ जाओ लाल, लगा आओ गैया।
कछु कारे कछु ओढ़ें कमरिया।
उनखों देख बिचक गई मोरी गैया।
कहुँ देखें कहुँ सेंट चलावें।
मुख पै दूध गिरै मोरी मैया।
तू तो गुआलिन मद की माती।
अब तो हमारो प्यारो बारो है कन्हैया।

इस गीत का प्रत्येक पद कितना भावपूर्ण है। उसमें उनके अनन्य प्रेम तथा अडिग विश्वास की कितनी गहरी छाप है, उसका लेखा-जोखा करना असंभव है। 'नेक पऊँ दो गिरधारी जू को मैया' में गोपियों ने अपने हृदय की आकांक्षा कितनी सरसता के साथ उड़ेली है। 'सो उनईं के हात लगे मोरी गैया' में तो उनके चरम विश्वास तथा चिरन्तन भावनाओं का परम सत्य प्रकट हुआ है।

इन्द्र के कोप से व्रजवासियों को बचाने के लिये श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया है। इसी संबंध में एक गोपी कह रही है :—

गिरधारी तोर बारो, गिर न परे।
एक हाथ हरि मुकट सवाँरे,
एक हाथ पर्वत लँय ठाड़े।
एक हाथ हरि खौरें सवाँरे,
एक हाथ पर्वत लँय ठाड़े।

एक हाथ हरि सुरमा लगावें ।
एक हाथ पर्वत लँय ठाड़े ।

(गायिका—व्रजरानी गौतम
वेदवंतीबाई)

दिबारीं

दीपावली के अवसर पर ग्राम-निवासी विशेषतः अहीर-ग्वाले लोग दिबारीं गाते हैं। दिबारीं में एक ही पद रहता है और वह टिमकी नगरिया बजाकर गाया जाता है। गायकों के झुण्ड के साथ एक नाचनेवाला भी रहता है, जो रंग-बिरंगे धागों की जाली से बनी घुटनों के नीचे तक लटकती हुई पोशाक पहिने रहता है। इसमें अनेक फुँदने लगे रहते हैं, जो नृत्य के समय चारों ओर घूमते हैं। नर्तक अपने दोनों हाथों में मोर पंख के मूठे लिये रहता है। दिबारीं एक निराला राग है। इसमें बाजे गाने के समय नहीं, गा चुकने के बाद बजाये जाते हैं। नीचे कुछ दिबारीं लिखी जाती हैं :—

(१) तुलसा बोवई दो जनीं, बेनईं बैने[1] आँय ।
तुलसा पूजें बामना, बोवई नँद के लाल रे ।

(२) वृन्दावन बसबो तजो, अर होन लगी अनरीत ।
तनक दह्यो के कारने, फिर बैयाँ गहत अहीर ।

(३) राही बिटिया बिरहुली,[2] खिरकों[3] खेलन जाय ।
धर फटकारे पैजना, मोरी चरत बिड़ारे[4] गाय ।

---

१ बेनईं बैने = बहिन बहिन । २ बिरहुली = शौकीन, लड़ैती । ३ खिरकों = खिरका में । ४ बिड़ारे = भगावे ।

(४) नँद बाबा खोंड़ों[1] धँसे, अर देख दूबरी गाय ।
मैं तोसों पूछों रावरे, कैसे झूरे[2] मलनियाँ साँड़ रे ।

(५) ऊँची गुबारें बाबा नंद की, चढ़ देखें जसोदा माय ।
आज बरेदी को भओ, मोरी भर दुपरे लौटी गाय रे ।

(६) खेल लै लरका खेल लै, आज को खेलो कब पाय है ।
तोरो कातक भागो जाय रे ।

(गायक— बारेलाल अहीर बरेदी
मठ बरेदी, देवरी)

सैरा नृत्य-गीत

वर्षा ऋतु में विशेषतः श्रावण तथा कजली के अवसर पर चाँदनी रात में सैरा गाया जाता है। सैरा गानेवालों की टोली अपने दोनों हाथ में दो छोटे-छोटे लकड़ी के डंडे, जो इसी काम के लिए पहले से बनवाकर रखे जाते हैं, लेकर गोलाकार खड़ी हो जाती है। गाना और नृत्य साथ-साथ प्रारंभ होता है। हर व्यक्ति अपने दायें-बायें दोनों ओर से बढ़नेवाले डंडों पर अपने डंडे मारता जाता है। टोली के सभी आदमी एक साथ गाते, दोनों तरफ के डंडों पर चोट लगाते तथा गोलाकार घूमते जाते हैं। नृत्य के समय वे कभी जमीन पर झुकते, कभी निहुरते और कभी बैठकर आड़े-तिरछे पड़ जाते हैं। परन्तु सभी स्थितियों में उनके डंडों की चोटें एक साथ समान रूप से पड़ती रहती हैं। बरसात के समय सैरा बहुत सुहावना लगता है।

---

१ खोंड़ों = पशुओं के बाड़े में। २ झूरे = दुबले।

कुछ सैरा-गीत इस प्रकार होते हैं :—

(१)

असढ़ा तो लागे रे, असढ़ा तो लागे ओ मोरे प्यारे, दूब गई हरयाय। बीरन लुवौआ आये नहीं, घर चुनरी धरी रँगाय।

(२)

खेरे बिहूने,[1] खेरे बिहूने अरे रुखड़ों[2] बिना हो, बिन सारे ससुरार।
बैन बिहूनी भैया बिना गलियों में बिसूरत[3] जाय।

(३)

तोरे गुन जान गई आर बलमा रे,
जब तो कहत ते रंगमहल में, हो रंगा महल में,
टूटी टपरिया में ल्याये बलमा रे। तोरे गुन……
जब तो कहत ते सेजा सुपेती[4], हो सेजा सुपेती,
टूटी खटुलिया पै ल्याये बलमा रे। तोरे गुन……

(४)

साहुन सुहानी[5] अरे मुरली बजे, भादों सुहानी मोर।
तिरिया सुहानी जबई लगै, ललुवा झूले पौर के दोर।

(५)

कजरा के काँटे लगें, बेंदी सौत की कोर।
आरों[6] के नैंहा लगें, मोय सालें[7] आधी रात।

(गायक—काशीराम काछी, देवरी)

---

१ बिहूने = बिहूना, अशोभन। २ रुखड़ों = वृक्षों। ३ बिसूरत = रोती हुई। ४ सेजा सुपेती = सफेद शय्या। ५ सुहानी = सुहावनी। ६ आरों = यारों, प्रेमियों। ७ सालें = आँसें, चुभें।

राई नृत्य-गीत

जिस प्रकार गुजरात की अरबी प्रसिद्ध है, उसी प्रकार बुन्देलखंड में राई। राई का कोई खास मौसम नहीं है। वह बारहों महीने, जब अवकाश और चैन हो, गाई जाती है। राई के गीत खयाल, टोरा स्वांग आदि कई प्रकार के होते हैं। बुन्देलखंड में राई के नाम से जितने दर्शक इकट्ठे होते हैं, उतने और किसी नाच-तमाशे मे नहीं होते। राई मृदंग, टिमकी तथा तारों के स्वर के साथ गाई जाती है। किसी मैदान में एक या अनेक टोलियाँ अपने साज-बाज के साथ खड़ी होती हैं। दर्शक उन्हें चारों ओर से घेर लेते हैं। टोली और दर्शकों के बीच काफी जगह छोड़ दी जाती है, जिसमें बेड़नी नाचती है। कभी-कभी दो-दो, चार-चार बेड़नियाँ भी साथ नाचती हैं। बेड़नी के अभाव में स्त्री-वेशधारी पुरुष नाचते हैं। राई में मृदंग बजानेवाले का कौशल देखने योग्य होता है। वह टोली के साथ रहकर मृदंग बजाता है और बीच-बीच में बेड़नी के पास जाकर उसके साथ नृत्य भी करता है। मृदंग-वाले की कुशलता पर ही राई की सफलता निर्भर रहती है। नाचने-वाली का मुखमण्डल दर्शकों को दिखता रहे, इसके लिए दो मशालची सदा उसके साथ चलकर उसके मुख पर प्रकाश डालते रहते हैं। नीचे दो-तीन राई गीत लिखे जाते हैं :—

ढुर लगे असाढ़ खबर नै लई हरि मोरी।
दादुर बोले पपीरा, मधुवन बोली मोर।
श्याम श्याम कह टेरियो चित है मोरी ओर।
खबर नै लई हरि मोरी।
ऊधौ जइयो द्वारका हरि सों कहियो समझाय।
खाकें जहर-बिष मर हों, पीछूँ पछताय।
खबर नै लई हरि मोरी।

असाढ़ का महीना लग गया। बरसात लगने के पहले सभी परदेशी अपने घर लौट आते हैं। पर घर लौट आने की कौन कहे, प्राणप्यारे ने एक संदेशा तक नहीं भेजा! इस कारण विरहिणी व्रजाङ्गना व्याकुल होकर दादुर, पपीहा तथा वन के मोर से प्रार्थना करती है कि जब तुम लोगों को बोलना ही है, तो 'श्याम' 'श्याम' कहकर क्यों नहीं पुकारते? शायद तुम्हारी पुकार हरि के कानों तक पहुँच जाय। उसकी वेदना बढ़ती जाती है। आखिर वे ऊधो को अपना संदेशवाहक बनाकर द्वारका भेजती हैं। कहती हैं—'ऊधो, प्राणेश्वर हरि से कहना, यदि वह नहीं आये, तो हम विष खाकर प्राण त्याग देंगी। पीछे, उनके हाथ पछतावा ही रह जायगा।' वियोग प्रेम का कैसा अच्छा चित्र खींचा गया है।

बजरई आधी रात बैरन मुरलिया जा सौत भई।
बन से तू काटी गई, छेदी तोय लुहार।
हरे बाँस की बाँसुरी मनो निकरो नै सार।
बैरन मुरलिया जा सौत भई।
पोर पोर सब तन कटे, हटे न औगुन तोर।
हरे बाँस की बाँसुरी, ले गई चित्त बटोर।
बैरन मुरलिया तू सौत भई।

जिसमें जो अवगुण होता है, वह हजार प्रयत्न करने पर भी नहीं छूटता। देखो, यह बाँसुरी पहले हरे बाँस से काटी गई, फिर लुहार ने उसके अंग-अंग गरम लोहे से छेदे, पर सार कुछ न निकला। उसके अवगुण दूर नहीं हुए। देखो, यह बैरिन मुरली आधी रात के समय बजती है और हमारे मन को चुराकर ले जाती है! कैसी ज्यादती है!

टेरें घनश्याम बाँसुरी में नाम लै लै टेरें।
सोवत ती में रंग महल में मोहन मारी सेन।
लागी नींद उचट गई सजनी अब नै लगें दोई नैन।
बाँसुरी में नाम लै लै टेरें।
जब-जब बाजी मोहन-वंशी तब-तब भई बेचैन।
अपनो दुख अब ए री सजनी कासों[1] जैये कैन[2]।
बाँसुरी में नाम लै लै टेरें।

(गायक—राधाचरण चौबे, पुरैना, पो० देवरी)

बेचारी ब्रज-बालाएँ वंशी के उत्पात से बहुत दुखी हैं। जब-जब वंशी बजती है, तभी बेचारी बेचैन हो उठती हैं। नींद हराम हो जाती है। वे अपना दुख किससे कहें? स्वतः ब्रजेश की वंशी ही तो यह उत्पात मचा रही है।

राई में जिस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार रामकृष्ण के प्रेम तथा भक्ति के गीत गाये जाते हैं, उसी प्रकार शृंगार रस तथा रसिकता से ओतप्रोत गीत भी गाये जाते हैं। बहुधा दूसरे प्रकार के गीत ही अधिक गाये जाते हैं। राई के नृत्य-गान के मध्य कभी-कभी स्वांग भी आते हैं, जिनमें हास्यरस की प्रधानता रहती है। राई रात-रात भर होती रहती है और दर्शकगण मंत्र-मुग्ध खड़े-खड़े देखा करते हैं।

श्रमदान के गीत

श्रमदान के अवसरों पर, यथा, फसल बोने, काटने, नींदने, चक्की पीसने आदि के समय किसान तथा मजदूर स्त्री-पुरुष इन गीतों को

---

१ कासों = किससे। २ कैन = कहने।

गाते हैं। ऐसा करने से काम के साथ उनका समय हँसी-खुशी के साथ बीत जाता है और श्रमबोध नहीं होता। कार्य का निर्वाह आदि से अंत तक सुखपूर्वक उत्साह के साथ होता रहता है। इन गीतों में बिलवारीं, वीरोठ, दिनरी आदि मुख्य हैं। नीचे श्रमदान के कुछ गीत दिये जाते हैं :—

बिलवारीं

देहों देहों कनक[1] उर दार, सिपाईरा डेरा करो रे मोरी पौरी में।
अरी हाँ हाँ री सहेलरी, कँहना गए तोरे घरबारे ?
कँहना गए राजा जेठ, लरकनी ऊँचे महल दियला जारें।
वे तो काहो ल्यावें तोरे घरबारे, काहो ल्यावें राजा जेठ।
वे तो लोंगे ल्यावें मोरे घरबारे, लायची ल्यावें राजा जेठ।

ऊपर किसी विरहिणी नायिका द्वारा आगन्तुक सिपाही को आटा-दाल देकर पौर में ठहराने का प्रयत्न दर्शाया गया है। नीचे की बिलवारी में राम-वियोग से दुखी आयोध्यावासियों का राम के साथ वन-गमन का प्रयत्न देखिए :—

रथ ठाड़े करो रघुवीर तुमारे संगे रे चलों बनवासा खों।
तुमारे काये के रथला बने काय के डरे हैं बुनाव।
चंदन के रथला बने रेशम डरे हैं बुनाव।
तुमारे रथ में को जो बैठियो को है हाँकनहार।
रानी सीताजी रथ में बैठियो, राजा रामजी हाँकनहार।

(गायक—काशीराम काछी, देवरी)

---

1 कनक = आटा।

खेत में नारी चल रही है। खेत बोया जा रहा है। ऐसे समय में खेत के पास से निकलनेवाले राहगीरों के कान में मृदु-मधुर तान पड़ती है:—

अनबोले[1] रहो न जाय ननदबाई बीरन तुमारे अनबोला[2] ।
गैया दुहाउन तुम जैयो उतै बछरा खों दैयो छोर ।
भौजी मोरी बीरन हमारे तब बोलें ।

किसी दूसरे खेत से आवाज आती है:—

आ जैहों बड़े भोर हो दही रे लैकें, आ जैहों बड़े भोर।
नै मानो कुड़री धर राखो मुतियन जड़ी है कोर ।
दही रे लैकें......
नै मानो मटकी धर राखो लिखे पपीरा मोर ।
दही रे लैकें......
नै मानो मोई खों[3] बिलमा ले, जोड़ी बनत अमोल ।
दही रे लैकें......
चन्द्रसखी रस बस भई राधा, छलिया जुगल किशोर ।
दही रे लैकें......

(गायक—प्रेम दुबे, बिचुवा)

दिनरी

देखे होंय तो बताव री सहेलरी राते के बीरा मोरे पाहुने ।
ए वे तो एक दिन देखे मैंने दरजी की दुकनियाँ ।

---

१ अनबोले = बिना कहे। २ अनबोला = बातचीत न करनेवाला ।
३ मोई खों = मुझे ही ।

बैठे बैठे बटुआ सुआँय[1] री सहेलरी राते के बीरा मोरे पाहुने।
ए वे तो एक दिन देखे मैंने पटवा की दुकनियाँ।
बैठे बैठे बटुआ में डोरा डराँय री सहेलरी राते के बीरा मोरे पाहुने।
ए वे तो एक दिन देखे मैंने बनियाँ की दुकनियाँ।
बैठे बैठे बटुवा में लोंगें भराँय री सहेलरी राते के बीरा पाहुने।

(गायक—भगवानदास मिश्र, देवरी)

भुजरियों के गीत

भुजरियाँ बुन्देलखंड का एक विशिष्ट त्योहार है। श्रावण शुक्ला नवमी को पत्तों के बड़े-बड़े दोनों में गेहूँ बोये जाते हैं। रोज सींचे तथा ढँककर रखे जाते हैं। इस कारण शीघ्र ही उनमें पीले रंग के पौधे बढ़ जाते हैं। भाद्र पद कृष्ण प्रतिपदा के दिन भुजरियाँ किसी जलाशय पर जाकर खोंटी तथा सिराई जाती हैं। भुजरियाँ सिराने के लिये स्त्रियाँ जलाशय तक जाती हैं। भुजरियाँ खोंटी जाने पर एक-दूसरे को देते तथा शुभकामना प्रदर्शित करते हैं।

दिल्लीपति पृथ्वीराज की फौजों ने चन्देल राजा परमाल की राजधानी महोबा को घेर लिया। चन्देल राजा के प्रसिद्ध सरदार शूर-शिरोमणि आल्हा ऊदल इस समय रूठकर कन्नौज चले गये थे। चन्देल ने संधि की शर्तों को पूरा करने के लिए पृथ्वीराज से १३ दिन की अवधि माँगी और अपने सरदार आल्हा ऊदल को मना लाने के लिए दूत भेजे। इसी अवसर पर भुजरियों का त्योहार आ पड़ा। महोबा की राजकुमारी प्रति वर्ष कीर्तिसागर तालाब पर भुजरियाँ सिराया करती थी। इस वर्ष शत्रु कीर्तिसागर की पार पर डेरा डाले पड़ा है, इसलिए लोगों ने सलाह

१ सुआँय = सिलावें।

दी, इस वर्ष भुजरियाँ घर पर ही खोंट ली जावें। पर राजकुमारी चन्द्रावली हठ पकड़ गई कि भुजरियाँ कीर्तिसागर पर ही सिराई जावेंगी। रक्षा की तैयारी की गई। ६०० डोलियाँ और चौड़ेलें सजाई गईं, जिनमें राजकुमारियाँ तथा राजवधुएँ सवार हुईं। प्रत्येक डोली में एक-एक हाँडी बारूद रख दी गई कि यदि अवसर आये, तो शत्रु के हाथ में पड़ने के पहले ही स्त्रियाँ इस बारूद से जल मरें। आखिर सब राजकुमारियाँ अपनी सखियों तथा रक्षकों के साथ कीर्तिसागर पर पहुँचीं। शत्रु-सेना ने उन पर धावा बोल दिया। दोनों पक्षों में खूब भयंकर लड़ाई हुई। इसी समय सौभाग्य से कन्नौज से जोगियों के वेश में आल्हा ऊदल आ गये और उन्होंने शत्रु-सेना को परास्त करके भगा दिया। भुजरियाँ कीर्तिसागर में सिरा दी गईं। भुजरियाँ सिराने के पहले वे घर के बाहर रखी जाती हैं। उनकी पूजा की जाती है। इस समय स्त्रियाँ भुजरियों को घेरकर राछरे तथा मँगादा गीत गाती हैं। नीचे कुछ राछरे तथा मँगादा गीत दिये जाते हैं। परन्तु स्थानाभाव से उन सबका भावार्थ नहीं दिया जा रहा है। कठिन शब्दों के शब्दार्थ दे दिये गये हैं।

राछरा (१)

सबरे उरगिया[1] उरई गये, मैया हमईं उरई खों जाँय।
मैया भली है उरई की चाकरी।
कहाँ तो धरो मैया जीन पलेंचा[2] कहाँ धरे हथयार।
घुल्लों[3] टँगे हैं जीन पलेंचा, उतईं धरे हथयार। मैया भली है...
घोड़ी बँधी घुड़सार में, बेटा कस ले हो जा सवार।
छींकत घोड़ा पलानियो बेटा बरजत भये असवार। मैया भली है...
बहिन पकर गई फेटली, माता घोड़े की रे बाग।

---

१ उरगिया = उरग के रहनेवाले। २ पलेंचा = घोड़े की जीन। ३ घुल्लों = खूँटियों।

रनियाँ पकर गईं पाँवड़ीं, मैया भली है उरई की चाकरी।
बैठी जो रैयो रानी सतखंडों, खैयो डवन के पान।
हम तो पलट घर आइयो, मुतियों भराहों तोरी माँग।
बरियो अटरियाँ जे सतखंडा, पानो पै परियो तुषार।
प्यारे तुमारे अकेले जीरा बिना,सूनो लगे संसार।
ऊँचो सो खेरो बरी को पेड़ो, जे तरें लये हैं उतार।
दुश्मन आनके घेरियो, रे भाई बीरन डारें हैं मार।
ओढ़ पिछौरा रानी सो रहीं, सपने में बीरन दिखान।
हम तो गये रानी चाकरी, बैरों ने डारे हैं मार।
सपनो देवर मोरे आइयो, तुम्हारे बीरन डारे हैं मार।
अग्गम पच्छम सब देखियो, प्यारे प्रीतम कहूँ नै दिखाय।

भुजरियों की लड़ाई बेतवा तट पर उरई के मैदान में हुई थी। राजा परमाल के आदेशानुसार उनके सभी सिपाही लड़ने के लिए उरई के मैदान में एकत्रित हुए थे। प्रस्तुत गीत का सिपाही इसी लड़ाई में जाने की तैयारी कर रहा है।

देश पर विपत्ति आई है। सभी उरगिया उरई की लड़ाई को चले गये हैं। ऐसे अवसर पर भला वह कैसे रह सकता है ? वह कहता है- "माता, जीन-पलेंचा कहाँ रखा है और हथियार कहाँ रखे हैं।" "खूंटियों पर जीन-पलेंचा टँगा है और वहीं हथियार रखे हैं। घोड़ी घुड़सार में बँधी है, कसकर सवार हो जाओ।" छींकते हुए घोड़ी पर जीन कसी और बरजते हुए सवार हुआ। जब वह जाने लगा, तो बहन ने भाई की फेंट पकड़ ली और माता ने घोड़ी की लगाम। पत्नी ने आकर पाँवड़ी पकड़ ली। वह बोला—"रानी युद्ध से वापिस आकर मैं तुम्हारी माँग मोतियों से भरा दूंगा। तुम मजे से अटारी के सतखंडा पर बैठी रहना।

और डिब्बों के पान खाना।" पत्नी जवाब देती है—"ऐसे सतखंडे में आग लग जावे, पानों पर तुषार पड़ जावे। प्रियतम, यह मुझे कुछ नहीं सुहाता। अकेले तुम्हारे बिना मुझे यह सारा संसार सूना लगता है।" सिपाही चला गया। एक ऊंची जगह पर गाँव है। वहीं बरिया के पेड़ के नीचे वह उतर पड़ा। दुश्मनों ने आकर उसे घेर लिया और मार डाला। इधर घर में उसकी पत्नी पिछोरा ओढ़े सो रही थी। सपने में उसके पति ने आकर कहा—"मैं लड़ाई को गया था। मुझे दुश्मनों ने मार डाला है।" पत्नी घबड़ाकर उठी, उसने अपना सपना देवर को सुनाया। उस दिन से पूर्व, पश्चिम, सब दिशाओं में उसने प्रियतम को खोजा, पर कुछ पता न चला।

राछरा (२)

चन्द्र कुँवर को राछरो।
रे भाई, काहे को महल उठाइयो काहे को ढोरे हैं बाँस।
रहबे खों महल उठाइयो, शोभा खों ढोरे हैं बाँस।
दिन दस रहन न पाइयो, डस लये करिया नाग।
पाँव महावर नईं छूटियो, फरिया के छूटे न दाग।
इन्द्रलोक से गहनो जो आयो, बहुआ चन्द्राबल के जोग।
हम कैसे गहनो पहरियो, बारे में भओ है विनास।
इन्द्रलोक से कपड़ा जो आये, बहुआ चन्द्राबल के जोग।
हम कैसे कपड़ा पैरियो, बारे में भओ है विनास।
माथे पें बिंदिया बाँधी नईं, मोतों भरी नैयाँ माँग।
हम विध[1] को काहो बिगारियो, बारे में हो गए विनास।
बर तो जैयो भैया तोरी कूँख, जिनमें लये औतार।
जल बिन नदिया बिहूनी रे भाई वैसई पती बिन नार।

(गायिका—द्रोपदीबाई, ग्राम खैरी, पो० देवरी)

---

१ विध = विधाता।

राछरा (३)

साहुन महिना नीको लगे, अरे गेंवड़ें[1] भई हरयाल ।
साहुन में भुजरियाँ बै दईं[2] भादों में दई हैं सिराय ।
ऐसो है कोऊ भैया धरमी बहिन खों लव है बुलाय ।
आसों[3] के सहुना घर के करो, आगे के दैहों कराय ।
सोने की नादें दूधों भरीं सो भुजरियाँ लेव सिराय ।
कै जैहें तला की पार भैया रे कै जैहें भुजरियाँ सूख ।
धरी भुजरियाँ मानक चौक में वीरा रहे तुलाय ।
कैसी बहिन हटें परी बरबस[4] लेत पिरान[5] ।
आसों के सहुना जूझ के हैं आगे के दैहों कराय ।
नयनिया बुलाव री बखरी में बुलौवा देव फिराय ।
दौरी दौरी नाइन फिरे घर-घर फिरे नकीब ।
कहाँ धरी माथे की बिंदिया कहाँ धरे सिंगार ।
डबियन धरी माथे की बिंदिया वगसन धरे सिंगार ।
कहाँ धरी है करहा कटरिया कहाँ धरी गेंड़ा की ढाल ।
कोनन[6] टँगी करहा कटरिया घुल्लन[7] टँगी है ढाल ।
कहाँ धरो सुरसी को बागो कहाँ निरबोला पाग ।
जमखाने में सुरसी को बागो, ऊपर धरी है पाग ।
झूला झूलत भैया खों लेव बुलाय छप्पन भोजन
देव कराय ।

---

१ गेंवड़ा = गाँव का समीपवर्ती बाहरी भाग, मैदान । २ बै दईं = बो दीं । ३ आसों = इस बर्ष । ४ बरबस = जबरदस्ती । ५ पिरान = प्राण । ६ कोनन = कोने में । ७ घुल्लन = खूँटियों पर ।

सोने के थारन परोसो रूपे के गडुअन नीर ।
एक कौर भैया दे लग्रो दूजो दओ सरकाय ।
कै लाला माछी गिरी कै टूटो सिर को बार ।
नै तो मैया माछी गिरी नै टूटो सिर को बार ।
कुँवर कलेवा वे करें जे कुँवारी ब्याहन जाँय ।
हम कलेऊ का करें जो रन जूझन खों जाँय ।
रचाये पाँव घुड़िया के पूँछ रँगी सराबोर ।
बारन बार मोती गोये किसवारन हीरा लाल।
बिटियन के डोला सजे बहुअन की चौंडेल ।
लहर लहर डोला चले पचरँग चली चौंडेल ।
जेठी पकर गई ताजमों लुहरी घोड़ा की बाग ।
जेठी खों पठैयो मायकें लुहरी को तुम पै भार ।
धरी भुजरियाँ तला की पार बिटिया आन सिराव[1] ।
टूटी फौजें दुसमन की बहनें भगने होय भग जाव ।
हाथ काहू के परियो नहीं, लग जैहे कुल में दाग ।
तुपकन[2] के कुँदुआ लगे, मूँडन[3] के गँजे पहार ।
बसती लड़े इड़ियन छिड़ियन मँगादा लड़ें मैदान ।
मारत मारत भुज्जें रै गई ललकारत रै गई भाँस[4] ।

(गायिका—द्रौपदीबाई, खैरो)

श्रावण का महीना सुहावना लगता है। गाँव के बाहर हरियाली फैल गई है। कोई ऐसा धर्मवान भाई है, जो इस अवसर पर बहन को

---

१ सिराव = सिराना, पानी में डालना। २ तुपकन = बन्दूकों के।
३ मूंडन के = सिरों के। ४ भाँस = आवाज।

मायके बुलावे ? इस वर्ष का साहुन (भुजरियाँ) घर पर ही मना लो। नादों में दूध भरा रखा है, उसीमें भुजरियाँ सिरा दो। आगे का साहुन (कीर्तिसागर पर) करा दूँगा। बहन हठ पकड़ गई है। कहती है, या तो भुजरियाँ तला की पार पर सिराऊँगी या घर पर रखी-रखी वे सूख जायेंगी। भुजरियाँ मानक चौक में रखी हैं। शूरवीर तैयार खड़े हैं। बहन, तू कैसी हठ पकड़ गई है ? क्यों जानबूझकर हमारे प्राण लेना चाहती है ? इस वर्ष का साहुन जूझ का है। शत्रु-सेना घेरा डाले पड़ी है। अगला साहुन (तला की पार पर) करा दूँगा। बहन नहीं मानी। नाइन बुलौवा देने दौड़ी। नकीब फिरे। बहू-बेटियाँ शृंगार करने लगीं। कहाँ माथे की बेंदी रखी है और कहाँ शृंगार रखा है ? डिबिया में माथे की बेंदी रखी है और पेटी में शृंगार। कहाँ कमर की कटार रखी है और कहाँ गेंड़ा की ढाल ? कोने में कटार टँगी है और खूँटी पर गेंड़ा की ढाल। कहाँ सुरसी का बागा रखा है और कहाँ निर्बोला पाग ? जमखाने में बागा रखा है और ऊपर पाग। तैयारी हो चुकी। भैया भूला भूल रहे हैं, उहें बुलाकर भोजन करा दो। सोने की थाली में भोजन परोसा गया और चाँदी के लोटे में पानी। भैया ने एक कौर मुँह में दिया और थाली सरका दी। क्यों बेटा, मक्खी गिर गई या सिर का बाल ? न तो माता, मक्खी गिरी है और न सिर का बाल। कलेऊ तो वे करते हैं, जो कुँवारी ब्याहने जाते हैं। माता, हम क्या कलेऊ करेंगे, जिन्हें रण जूझने जाना है। घोड़ी के पाँव और पूरी पूँछ रँग दी। उसके बालों में मोती गुहे, किसवार में हीरे लाल लगाये। बिटियों के डोला चले और बहुओं की चौड़ेलें। जाते समय जेठी ने घोड़ी की मुहरी पकड़ ली और लुहरी ने लगाम। जेठी को मायके भेज दो और लुहरी का भार तुम पर है। आखिर भुजरियाँ तालाब की पार पर रख दी गईं। बेटियों से कहा गया—जाकर भुजरियाँ सिराओ। इसी समय शत्रु-सेना टूट पड़ी। बहनों, भागना हो तो भाग जाओ। पर, किसीके हाथ मत पड़ना, नहीं तो कुल में दाग लग जायगा।

जमकर लड़ाई हुई। मृत सिपाहियों की बन्दूकों के ढेर लग गये और मस्तकों के पहाड़ गँज गए। बस्ती के लोग अगल-बगल, ओरों-खोरों से लड़ते हैं, पर मँगादा वीर सामने मैदान में। शत्रुओं को मारते-मारते उनकी भुजाएँ थक गईं और ललकारते-ललकारते आवाज बैठ गई।

अकती

वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ वर-पूजन करती और अकती के गीत गाती हैं। इसी समय वे एक-दूसरी से अपने-अपने पतियों का नाम भी पूछती हैं। नीचे एक अकती का गीत दिया जाता है।

नगर अजुध्या की गैल में इक महुआ इक आम।
जे तरें बैठे दो जने, इक लछमन दूजे राम।
लीली बछेरन लछमन आइयो रथ चढ़ आये श्रीराम।
सात सखिन के झुंड में बेटी सीता सपरन[1] जाँय।
बीच मिले दोई पाहुने सीता रही सकुचाय।
सपरखोर[2] घर आईं बारी सीता भौजी ने दये
पलँग बिछाय।
कै बैया मूँड़ धमकियो कै तन आई है ताप।
नै भौजी मूँड़ धमकियो नै तन आई है ताप।
तुम्हारे तो आये भौजी पाहुने हमारे चलाउनहार[3]।
आये पहुना फिर जैहें रैहें दिना दो चार।
नै मोरी बैया मने बिसूरियो नै करो जिया उदास।

---

१ सपरन = सपरने के लिए। २ सपरखोर = स्नान करना।
३ चलाउनहार = बिदा कराके ले जानेवाले।

टेरो जनकजू के नौआ बारे लछमन खों डेरा दुआव।
सेजें सुपेती लरम[1] गदेला पाहुनों खों देव बिछाय।
पाना पचासी के बीरा लगाओ सिसियन अतर भराव।
झँझन झारी जल भरवाओ बारे देवरा के डेरा पौंचाव।
राम-लखन मोरे पाहुने आये रुच सें रचो जेवनार।
सुरहन गौ को गोबर मँगायो ढिग धर अंगन लिपायो।
भओ बुलौवा चलो रघुराई अपनी सभा सब लेव बुलाई।
भूले होंय खबर कर लीजो रूठे होंय मना सब लीजो।
चरण पखार चरणोदक लीनो सब खों सुन्दर आसन दीनो।
सोने के थार परोसे जनकजू रूपे के बेलन दूध।
भात जो परसो कमोद को, हरियल मूँग की दार।
बरा जो परसे खैरे खारे, आदो मिरच लोंग दधिवारे।
पापर परसे चुररे मुररे सुगर[2] सबासन रुच सों बेलें।
खाँड जो परसी मुठी बगराई ऊपर सें घी की धार लगाई।
फुलका परसे दो दो जोटा भर गई पातर उलँग[3] गए दोना।
निबुआ पौल धरो ढिग आधो भोजन करो मनोहर माधौ।
जेउत-जेउत[4] बड़ी रुच आई बार-बार हरि करी बड़ाई।
जेय अँचय हरि बाहर आये पान के बीरा दये मनभाये।
अचरन के गुन मानियो मोरी सीता के तुमइँ अधार।
तुम्हें जो कहिये सीता अधिक प्यारी हमारी प्राणाधार।

---

१ लरम = नरम । २ सुगर = चतुर। ३ उलँग गए = अधिक भरना जिससे वस्तु पात्र से गिरने लगे। ४ जेउत-जेउत = खाते-खाते।

टेरो[1] नै नगर की नाइन सीता को कराओ सिंगार ।
माथे हो बीज जड़ाव की चुटबंद खेंच गुहाई ।
मुतियन माँग भराय कें बेंदी रतन जड़ाव ।
बाँह बरा बाजूबंद सोहें लूमन[2] की छब न्यार ।
नाक चिनी नकबेसर सोहै सरजा है रतन जड़ाव ।
भओ सिंगार उठी तब सीता माता से रही लिपटाई ।
लक्ष्मी निध से भैया भेंटे सिद्धी सी भौजाई ।
भर अकबार[3] मिलीं सब सखियाँ असुवा[4] रही ढरकाई ।
डुलियन सीता बिसूरियो चली ससुर के देश ।
सीता पौंची सासरें सब सखियन लई अगवान ।
बर[5] तरैं पौंची सीता देवर ने लई अगवान ।
नाव ले भौजी नाव ले अपने पती को नाव ।
सबरी सखियाँ नाव ले गईं अब है तुमारी बार[6] ।
अब की बिटियाँ कलजुग की कहिये लेत पती को नाव ।
हम सीता सतयुग की कहिये सो लेवें नै पुरुष को नाव ।

(गायिका—हीराबाई, खैरा बलेह)

इस गीत में श्रीराम लक्ष्मण की जनकपुर की पहुनाई, भोजनों की रुचिरता तथा सीताजी की विदा के समय का सुन्दर चित्र खींचा गया है। जब श्रीराम जी ससुराल से घर पहुँचते हैं, तब माता कौशल्या उनसे ससुराल का वृत्तान्त पूछती हैं :—

१ टेरो = बुलाओ । २ लूमन = लटकन । ३ भर अकबार = दोनों भुजाओं में भरकर । ४ असुवा = आँसू । ५ बर = वट वृक्ष । ६ बार = बारी, ।

हँस हँस पूछें माय कौशिल्या बेटा कैसी बनी ससुरार ।
सास हमारी गंगा जो जमना ससुर हैं तीरथ पिराग ।
सासें हमारी अधिक पियारीं देती हैं दूध बियारीं[1] ।
सारे हमारे घुड़ला फिरावें साराजें[2] तयें रसोई ।
जैसी माता मढ़ भीतर लिखी पुतरियाँ वैसी है बहू तुमार ।
नौ-दस मास बेटा गरभ में राखे वर्ष दसक लौं सेये[3] ।
तीन दिना खों बेटा गए ससुरारे सो जाय सिराही[4]
ससुरार ।
धुआई[5] खेंचों पिता दशरथ की अब न जैहों ससुरार ।
अपने रामजी सों ररी[6] करत हों बेटा नित उठ जैयो
ससुरार ।

(गायिका—हीराबाई)

राम ने ससुराल की प्रशंसा की । सास को गंगा-यमुना और ससुर को तीर्थराज प्रयाग बतलाया, तो कौशल्या को बुरा लग गया । कहने लगीं—"बेटा, मैंने तुम्हें नौ-दस महीना पेट में रखा, अनेक वर्षों तक तुम्हारा पालन-पोषण किया, पर तुमने हमारी कभी प्रशंसा न की और तीन दिन को ससुराल गये, तो वहाँ की प्रशंसा के पुल बाँध दिये ।" माता की बात सुनकर राम कहने लगे—"पिता जी की सौगंध, अब मैं कभी ससुराल न जाऊँगा ।" कौशल्या ने देखा, यह तो अनर्थ हो गया । अतः वे कहने लगीं—"नहीं बेटा, यह क्या कहते हो ? मैं तो तुमसे हँसी कर रही थी । तुम सदैव ससुराल जाया करो ।"

---

१ बियारीं = रात्रि का भोजन, व्यालू । २ साराजें = सालों की स्त्रियाँ । ३ सेये = पालन-पोषण किया । ४ सिराही = सराहना की, तारीफ की । ५ धुआई = सौगंध । ६ ररी = हास-परिहास ।

विशिष्ट जातियों के गीत

ढिमरहाई, सजनई और बिरहा

ढिमर जाति में द्विजातियों के सम्पर्क में रहने के कारण यों तो जीवन-संस्कार के अवसर-अवसर के विविध गीत भी गाये जाते हैं, पर विशेषत: सभी अवसरों पर वे सजनई और बिरहा ही अधिकतर गाते हैं। सजनई और बिरहा उनके विशेष जातीय गीत हैं। ये गीत चिघाड़ा और करतालों के स्वर के साथ गाये जाते हैं। गाना तथा नाचना साथ-साथ चलता है। ढिमरहाई नृत्य-गीत बड़े आकर्षक होते हैं। उनके सुनने के लिए तुरंत जन-समुदाय एकत्रित हो जाता है।

सजनई

लठिया लै ले रे सैयाँ, लठिया लै ले रे सैयाँ,
भूसा चर गईं रे गैयाँ।
बारे बलम खों बेर बेर हटकी, बारे बलम खों बेर बेर
हटकी, घोसीपुरा जिन जाव।
घोसीपुरा की चंचल छुकरियाँ, घोसीपुरा की चंचल
छुकरियाँ, छैला लयें बिलमाय।
लठिया लै ले रे सैयाँ, लठिया लै ले रे सैयाँ,
भूसा चर गईं रे गैयाँ।

हे प्रियतम, लाठी ले लो। गायें भूसा चर गई हैं। मैंने अपने छोटे बलम को बार-बार रोका—बहुतेरा समझाया कि तुम घोसीपुरा मत

जाया करो। घोसीपुरा की छोकरियाँ बड़ी चंचल हैं। वे छैलों को बिलमा लेती हैं।

भूली भूली सजन रे तोरे देश, आबत गलियाँ भूल गई।
कौना पुरा तोरो माई मायको, कौन पुरा तोरो माई मायको,
कौन पुरा ससुरार।
भूली भूली सजन रे तोरे देश, आबत गलियाँ भूल गई।
ऊलेपुरा तोरो माई मायको, ऊलेपुरा तोरो माई मायको,
पैलेपुरा ससुरार।

हे साजन, मैं तेरे देश आते-आते मार्ग भूल गई। कौन पुरा में तेरा मायका है और कौन पुरा में ससुराल ? मैं मार्ग भूल गई हूँ। एलेपुरा में मेरा मायका है और पैलेपुरा में ससुराल।

बिरहा

स्वास बिरानी पाहुनी छिन आवे छिन जाय।
को जाने जा पाहुनी कौन घरी चली जाय।
रामई राम लँय जैयो मोरी सीताराम लँय जैयो।

यह साँस बिरानी है। उस पर अपना कोई अधिकार नहीं। वह पाहुनी है। क्षण में आती और क्षण में जाती है। पाहुनी ठहरी, उसका क्या भरोसा, कितने दिन ठहरे और कब किस दिन चली जाय। इसलिए जाते समय, मेरी रामराम—सीताराम लेते जाना।

राम राम की मूर्ती मो मन गई समाय।

ज्यों महदी के पात में लाली लखी नैं जाय ।
रामई राम मना ले भैया दुनियाँ में जीवन थोरो ।

राम की मूर्ति मेरे मन में इस प्रकार समा गई है जैसे मेंहदी के पत्तों में लाली समाई रहती है । हे भाई, दुनियाँ में जीवन थोड़े दिन का है, इसलिए केवल राम नाम का ही स्मरण करो ।

ढिमरहाई गारी

काहे दिलडारें गोरी ठाड़ीं अँगना ।
काहे के तोरे बाजूबंदा काहे के ककना ।
काहे की तोरी मोहनमाला जपरई अँगना ।
सोनें के तोरे बाजूबंदा चाँदी के ककना ।
रूपे की तोरी मोहनमाला जपरई अँगना ।
कौना ले दये बाजूबंदा कौना ने ककना ।
कौनें ले दई मोहनमाला जपरई अँगना ।
देवरा ने ले दये बाजूबंदा ननदी ने ककना ।
ससुरा ने ले दई मोहनमाला जपरई अँगना ।
कैसे टूटे बाजूबंदा कैसे कैं ककना ।
कैसे टूटी मोहनमाला जपरई अँगना ।
खेलत टूटे बाजूबंदा निहुरत में ककना ।
लिपटत टूटी मोहनमाला जपरई अँगना ।

(गायक—कुबऊ ढीमर, देवरी (सागर)
बलदेव ढीमर, मढ़ी जमुनियाँ)

हे गोरी, आँगन में अनमनी क्यों खड़ी हो ? तेरे बाजूबंद काहे के हैं, ककना काहे के हैं और मोहनमाला काहे की है ? सोने के तेरे बाजू-

बंद हैं, चाँदी के ककना और रूपे की मोहनमाला है। तुम आँगन में अनमनी क्यों खड़ी हो ? भला यह तो बताओ, किसने बाजूबंद ले दिये हैं, किसने ककना ले दिये हैं और किसने मोहनमाला ? देवर ने बाजूबंद ले दिये हैं, ननद ने ककना ले दिये हैं और ससुर ने मोहनमाला। तेरे बाजूबंद कैसे टूटे, ककना कैसे टूटे और कैसे टूटी मोहनमाला ? खेलने में बाजूबंद टूटे, निहुरने में ककना टूटे और लिपटने में मोहनमाला टूटी है।

आदिवासी भोई—गोंड जाति का शैताम नृत्य-गीत

बुन्देलखंड में गोंड, भोई, सौंर आदि अनेक आदिवासी जातियों का निवास किसी-किसी क्षेत्र में अधिकता से पाया जाता है। देवरी के पश्चिम तथा केसली मंडल में इन लोगों की अनेक बस्तियाँ हैं। ये लोग वर्तमान शिक्षा-दीक्षा तथा सभ्यता से आज भी कोसों दूर हैं। भोई जाति का शैताम नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। ये लोग इस नृत्य का आयोजन विवाह के समय अवश्य करते हैं। ओझा इसका सूत्रधार होता है। वह ढाँक लेकर बीच में खड़ा हो जाता है। ढाँक डमरू के आकार का एक बड़ा बाजा होता है, जो ढोलक की एवज में बजाया जाता है। भोई जाति की स्त्रियाँ ओझा को घेरकर खड़ी हो जाती हैं। वे अपने-अपने हाथ में चटकोरा लिये रहती हैं। ओझा गाना प्रारंभ करता है। गीत को सब स्त्रियाँ दुहराती हैं और चटकोरा बजाती हुई नाचती हैं। स्त्रियाँ उच्च स्वर से गाती और उत्साह के साथ नाचती हैं। बड़ा मजा आता है। नीचे शैताम नृत्य के समय गाये जानेवाले दो-एक गीत दिये जाते हैं।

शैताम गीत

पैले रे पार की नौरंग गोरी हरे हरे गुंडा रिझाउन खौं।
हम कैसे आवें भोले श्यामलिया, पाँउन में बिछिया बजन मारी[1]।

---

1 बजन मारी = बहुत बजनेवाले।

बिछिया उतार गोरी ओली में धर ले खेलन डंडा मिलाउन खों।
पैले रे पार की नौरँग गोरी हरे हरे गुंडा रिझाउन खों।

पैले पार नौरंग गोरी है। वह अच्छे-अच्छे गुंडों को रिझाती है। हे मेरे भोले श्यामलिया, मैं तुमसे मिलने कैसे आऊँ? मेरे पाँव में बहुत आवाज करनेवाले बिछिया हैं। हे गोरी, बिछिया उतारकर ओली में रख लो और खेलने तथा डंडा मिलाने के लिए आ जाओ।

भाई र रामा को मैंने काहा बिगारो बालम मिले नादान।
पीसन जैहों सँगे लग जैहें सखी री बालम मिले नादान।
नुकायने[1] के धोके बालम खों ऊर दये[2] बालम मिले नादान।
गुबरा खों जैहों सँगे लग जैहें, ए मोरी सखी सँगे लग जैहें।
गुबरा के धोके बलम को ठूँस दये बालम मिले नादान।
भाई रे रामा को मैंने काहा बिगारो बलम दये नादान।
पनियाँ खों जैहो सँग लग जैहें, ए मोरी सखी सँग लग जैहें।
गघरी के धोके बलमा खों फाँस दये, बालम मिले नादान।
नदिया खों जैहें सँगे लग जैहें, ए मोरी सखी सँगे लग जैहें।
धोती के धोके बलम खों फींच दये[3], बालम मिले नादान।
भाई रे रामा को मैंने काहा बिगारो बालम मिले नादान।

---

१ नुकायने = बीना हुआ अनाज जो पीसने को रखा जाता है, उसे नुकायना कहते हैं। २ ऊर दये = चक्की के छेद में अनाज डालने को ऊर देना कहते हैं। ३ फींच दये = पछार देना।

रुटिया[1] खों जैहों सँगे लग जैहें, ए मोरी सखी सँगे लग जैहें।
डूँडा[2] के धोके चूल्हे में ठूँस दये, बालम मिले नादान।

भाई, मैंने ईश्वर का क्या बिगाड़ा था कि उसने मुझे नादान पति दिया ? मेरी विडम्बना तो देखो, वह मेरे पीछे लगा फिरता है। मैं चक्की पर पीसने बैठती हूँ, तो वह मेरी जाँघ से सटकर जा बैठता है। एक बार मैंने उसको अनाज के धोके में चक्की में ऊर दिया ! मैं गोबर उठाने जाती हूँ, तब भी वह मेरे साथ लग जाता है। एक बार मैंने उसे गोबर के धोखे में गोबर की हेल में पटक दिया ! हे भाई, मैंने ईश्वर का ऐसा क्या बिगाड़ा था, जो उसने मुझे नादान पति दिया। पानी को कुएँ पर जाती हूँ, तब भी वह पीछे-पीछे चला जाता है। एक बार मैंने घड़े के धोखे में बालम को ही फाँसकर कुएँ में डाल दिया ! नदी जाती हूँ, तो भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता। एक दिन मैंने धोती के धोखे में बालम को ही पछार दिया ! मैं रसोई बनाने बैठती हूँ, तो वह चूल्हे के पास जा बैठता है। एक बार मैंने लकड़ी के धोखे में उसे चूल्हे में ठूँस दिया ! हे भाई, मैंने ईश्वर का क्या बिगाड़ा था, जो उसने मुझे ऐसा नादान पति दिया।

प्रस्तुत गीत में इस आदिवासी रमणी ने बाल विवाह का कैसा मजाक उड़ाया है ! कितना कसकर विरोध किया है ! कोई यह न समझे कि ग्रामीण अपढ़ जनों में बिहारी, बोधा और पजनेस जैसे कवि नहीं हुए, तो उनका ग्राम्य सहित्य हास्यरस से रिक्त होगा। इन अज्ञात अपढ़ जनों ने आवश्यकता के अनुसार काव्य के सभी रसों का समावेश ग्राम-गीतों में ऐसी निपुणता तथा बहुलता के साथ किया है जैसा साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ भी नहीं कर पाते।

---

१ रुटिया खों = रसोई बनाने के लिए। २ डूँडा = मोटी लकड़ी।

स्वाभिमानवश वर्तमान काल के समाज-सुधारक यह समझते हैं कि प्राचीन समय से चली आनेवाली बाल विवाह आदि कुप्रथाओं की ओर समाज का ध्यान उन्होंने आकर्षित किया है। समाज में फैली हुई बुराइयों और उनके दुष्परिणामों की ओर अपने धुँआधार व्याख्यानों द्वारा उन्होंने समाज को सचेत किया है। उनका यह अभिमान झूठा है। गाँव की स्त्रियाँ हजारों वर्षों से बाल विवाह और वृद्ध विवाह का विरोध प्रभावशाली ढंग से करती चली आ रही हैं। वे खेत-खलिहान, गली-कूचों, विवाह आदि उत्सवों के समय चलते-फिरते चिल्ला-चिल्लाकर इन कुप्रथाओं का विरोध प्रकट करती रहती हैं। यह विरोध समाज-सुधारक उपदेशकों द्वारा दिये गये व्याख्यानों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली तथा हृदयग्राही होता है। यह तो पुरुष-समाज का दोष है कि वह नहीं सुनता। उपरिलिखित शैताम गीत भौंरावारी भोइन (ग्राम बघवारा, पो० देवरी) से सुनकर लिखे गए हैं। बहुत पूछने पर भी उसने अपना असली नाम नहीं बतलाया। उसका जन्म-ग्राम से प्रचलित नाम ही यहाँ दिया गया है।

गड़रियाई भाँवर का गीत

आड़र दीनी गाड़र दीनी।
डला भर ऊन दीनी।
बम्मन मार पटा धर दीनी।
रूपे की घरी सोने की माल।
रँहट चलै पानी ढरे।
निम थे औलाद बढ़े।
कओ पंचो भावर परीं कै नईं?

स्फुट गीत

सीता वनवास का गीत

चौक चँदन बिन आँगन सूनो कोयल बिन अमराई ।
रामा बिना मोरी सूनी अजोध्या लछमन बिन ठकुराई ।
सीता बिना मोरी सूनी रसोइया कौन करै चतुराई ।
आम इमलिया की नन्हीं नन्हीं पतियाँ नीम की शीतल छाँह ।
ओई तरें बैठीं ननद भौजाई कर रहीं रावन की बात ।
जौन खना भौजी तुमें हर ले गव हमें उरेह बताव ।
रावन उरे हों जबई बारी ननदी घर में खबर न होय ।
जो सुन पाहें बीरन तुम्हारे घर सें देंय निकार ।
राम की सौगँध लखन की सौगँध दसरथ लाख दुहाई ।
हमारी सौगँध खाओ बारी ननदी तुमरो कहा घट जाई ।
अपनी सौगँध खात हों भौजी सिजियाँ पाँव न देऊँ ।
सुरहन गऊ के गोबर मँगाओ बैया भिटिया देव लिपाई ।
हाथ बनाये, पाँव बनाये और बत्तीसई दाँत ।
ऊपर को मस्तक लिखन नहिं पाओ आ गए राजाराम ।
ल्याव ने बैया पिछौरिया लिखना देंय लुकाय ।
राम लखन दोउ जेवन बैठे बहनी ने भरे नैनों नीर ।
कै तुमरो मूंड़ धमकियो कै तन आई है ताप ।
नै भैया मूंड़ धमकियो नै तन आई है ताप ।

जिन बैरों के भैया नाव न लीजे भौजी सोई लिखे मढ़माँझ ।
सजाओ नै भैया लछमन पालकीं अपनी भौजी खों देव पठाय।
चलो न भौजी मायकें तुमरी माई ने रचे हैं ब्याव ।
नैं मोरे बाबुल की दूसरि धियारी नै मोरें सहोदर वीर ।
सरग की पटकी हैं सीता अभागन धरती ने लई हैं झेल ।
इक वन लाँघो दुज वन लाँघो तिज वन लागी है प्यास ।
नै इत ताल न पोखरी नै इत जमुन जल नीर ।
तुम बैठो भौजी कदम की छैयाँ हम जल खोजन जाँय ।
सीतल चली है पवनियाँ सीता खों आ गई दुख नींद ।
उतै सें आये बारे देवरा दौनों में भर ल्याये नीर ।
नीर तो टाँगो कदम सें लछमन धर लई घरई की गैल ।
चलो है झकोरा लुढ़क गव दौना सीता पै परी जलबूंद ।
सीता उठी अकुलाय बिसूरें इतै मोरो कोऊ नै दिखाय ।
माँयसे निकसो इक तापसी सीता खों रव समझाय ।
चलो न बेटी सीता कुटी खों तुम मोरी धरम की बेटी ।
एक रात सिया रही हैं कुटी में लव कुस लये अवतार ।
कुसई को ओढ़न कुसई बिछौना वन फल करें अहार ।
होते जो पूत अयोध्या रानी सोनो लुटाउतीं ।
अरे बुलाव नै बन के नौआ खों रोचना देव पठाय ।
पहलो रोचना दियो राजा दसरथ खों दूजो कोशिल्या माय ।
तीजो रोचना दियो लछमन देवरा खों पिया खों दियो बरकाय ।
अरे अरे भैया लछमन माथे को रोचन कहाँ पाइयो ।
भैया भौजी कें भये नँदलाल नैना हिया जुड़ावनो ।
अरे भैया लछमन विपत के साथी भौजी खों ल्याव लुवाय ।

लव कुस दोऊ वनवासी बालक खेलें धनैयाँ को खेल ।
ठाड़े लछमन पूछियो कौन बाबुल तुमारे वीर ।
राजा दशरथ के हम नातिया लाला लछमन के हैं भतीज ।
पिता अपने को हम नाव न जाने सीता हैं माय हमार ।
चलो न बेटा अपनी कुटी खों जहाँ है माय तुमार ।
चलो न भौजी नगर अजुध्या तुम बिन नगर उदास ।
आउत देखीं बहिन सुभद्रा तेल की उरहन डारी ।
सत्त की साँची सीता उरहन सूखे जब आव ।
फट जा री धरती फट जा, जे में सीता जायँ समाय ।
फट गई धरती समा गई सीता लोग रहे हहराय ।
झपट राम जी ने चोटी पकरी जा जोड़ी कौने बिछुराई ।
तुम तो हुइयो गोकुल के कन्हैया हम बृषभान दुलारी ।
लै मटकी दध बेंचन आहों तब मिल है जा जोड़ी ।

(गायिका—द्रौपदीबाई गौतम, खैरी)

लोकगीतों में कथा-भाग सूत्र रूप से चलता है । इस छोटे गीत में सीता वनवास की सारी कथा कह दी गई है । ननद स्वतः ही भावज से रावण का चित्र बनाने को कहती है और अनेक सौगंधें खाकर बात को गोपनीय रखने का आश्वासन देती है । पर बाद में भाई से शिकायत करके निरपराध सीता को घर से निकलवा देती है । लक्ष्मण सीता को लेकर वन जाते हैं । एक वन, दूसरा वन और तीसरा वन पार करके लक्ष्मण सीता को निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देते हैं । सीता को प्यास लगती है । लक्ष्मण पानी की खोज में जाते हैं । यहाँ शीतल पवन चलती है । कदम्ब की छाँह में बैठी हुई सीता को नींद आ जाती है । लक्ष्मण दोने में जल लेकर आते हैं और सीता को सोती देखकर

कदम्ब की डाल से दोने को टाँगकर सीता को वन में अकेली छोड़ घर चले जाते हैं। हवा का झकोरा आने से पानी का दोना उलट जाता है और नीचे पड़ी हुई सीता पर जल के छींटे पड़ते हैं। सीता जाग उठती हैं। अपने को अकेली पाकर वे व्याकुल होकर रोने लगती हैं। इसी समय "सीता बेटी, मत रोओ" कहता हुआ एक तपस्वी आता है और सीता को आश्वासन देकर अपनी कुटी पर ले जाता है। सीता आसन्न प्रसवा थीं। वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँचने के दूसरे ही दिन सीता के लव कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न होते है। अयोध्या को रोचना भेजा जाता है। ऋषि-आश्रम में रहकर लव कुश दोनों भाई बड़े होते हैं। एक दिन वन में दोनों भाई धनुष विद्या का अभ्यास कर रहे थे। इतने में लक्ष्मण वहाँ आ पहुँचे। बालकों के रूप तथा उनके वाण चलाने की पटुता को देखकर वे समझ गये कि ये कोई उच्च कुल सम्भूत बालक हैं। लक्ष्मण ने उनका परिचय पूछा। बालकों ने कहा—"हम राजा दशरथ के नाती और वीर लक्ष्मण के भतीजे हैं। सीता हमारी माता हैं।" परिचय पाकर लक्ष्मण कुटी पर गए और सीता से अयोध्या चलने का आग्रह किया। सीता लक्ष्मण के साथ अयोध्या आईं। ननद ने जब देखा कि सीता आ रही हैं, तो उसने तेल की उरहन डाल दी और कहा—"भौजी, जब यह उरहन सूख जावे, तब घर के भीतर आना।" ननद द्वारा डाले गए इस व्यवधान को सीता सहन न कर सकीं। उन्होंने पृथ्वी से फट जाने की प्रार्थना की। पृथ्वी फट गई और सीता उसमें समा गईं। सीता को पृथ्वी में समाते देख राम दौड़े और उनकी चोटी पकड़ ली। पर उनके हाथ में चोटी ही रह गई।

बरसात में 'सीता की लट' नामक छोटे साँपों की श्रेणी के कुछ जीव दिखाई देते हैं, जो समूह रूप में रहते हैं। वे आकार-प्रकार में ठीक नागिन जैसे होते हैं। लोक विश्वास है कि राम के हाथ में सीता की चोटी के जो बाल रह गए थे, उन्हींसे इनकी उत्पत्ति हुई है।

इस गीत का रचयिता कोई अज्ञात देहाती कवि है। उसने रावण के चित्राङ्कन को सीता वनवास का कारण ठहराया है। बहन की शिकायत पर राम सत्यासत्य की जाँच किये बिना ही सीता को वन भेज देते हैं। देहाती कवि के लिए यही कल्पना, जैसा कि देहातों में होता है, अधिक सुलभ और बोधगम्य थी; इसीलिए उसने समाज में प्रचलित ननद भौजाई के विद्वेष को लेकर सीता वनवास के कारण की सृष्टि कर डाली है। लोकगीतों के रचयिता कवि अपने समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों तथा परिस्थितियों का चित्रण लोकगीतों में करते हैं। वे उच्च सभ्यता तथा राजकीय वैभवों से अपरिचित रहते हैं, इसीलिए वे बड़े-बड़े राजा महाराजाओं को भी अपनी जैसी स्थिति का समझते हैं। यही कारण है कि उसने राजराजेश्वरी सीता को वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर ननद से बातचीत करने तथा लक्ष्मण से पत्तों के दोने में जल ले आने का वर्णन किया है।

मानो गूजरी

कहाँना सें मुगला चले री मानो, कहाँना लेत मिलान।
पच्छम सें मुगला चले री मानो, अग्गम लेत मिलान।
ऊँचे चढ़ के मानो हेरियो, कोइ लग गए मुगल बजार।
हुकम जो पाऊँ रानी सास को, मैं तो देख आऊँ मुगल बजार।
मुगला को का देखने री मानो, मुगला मुगद[1] गँवार।
सास की हटकी मैं न मानो मैं तो देख आऊँ मुगल बजार।
जो तुम देखन जात हो री मानो, कर लो सोरहों सिंगार।
तेल की पटियाँ पार लईं मानो, बिंदियन की छब न्यार।
चलीं चलीं मानो हुना गईं रे कोई गई कुमरा के पास।

---

1. मुगद = निपट।

अरे अरे भैया कुमरा के रे इक मटकी हमें गढ़ देव ।
एक मटकिया का गढ़ूं री मानो मटकी गढ़ों दो चार ।
एक मटकिया ऐसी गढ़ो रे भैया, जा में दहिया बने उर दूध ।
अरे अरे भैया कुमरा के तुम कर दो मटकिया को मोल ।
पाँच टका की जाकी बोनी है री मानो, लाख टका को मोल ।
पाँच टका धरती धरे कुमरा के मटकी लई उठाय ।
दहिया-दूध जा में भर दियो री मानो देख आव मुगल बजार ।
चली चली री मानो हुना गई रे कोई गई मुगला के पास ।
पहली टेर मानो मारियो–रे कोई दहिया लेत कै दूध ।
दूध दही के गरजी नहीं रे मानो घूँघटा को कर दो मोल ।
दूजी टेर मानो मारियो रे, कोई मुगल लई पछियाय ।
लौट आओ मानो बदल आओ रे मोरी रनियाँ देखें जाव ।
रनियाँ को का देखने रे मुगला ऐसी रैतीं मोरें गुबरारि ।
लौट आओ मानो बदल आओ मेरे कुँवरन देखें जाव ।
कुँवरन को का देखना रे मुगला मेरे रैते ऐसे गुलाम ।
लौट आओ मानो बदल आओ मेरे हतिया देखें जाव ।
हतियन को का देखना रे मुगला, मेरी भूरी भैंस को मोल ।
घुँघटा खोलत दस मरे रे मुगला बिंदियन देख पचास ।
मुगला सौक[1] जब मरे जब तनिक उघर गई पीठ ।
सोउत चन्द्रावल ओघके रे तेरी ब्याही मुगल लैं जाय ।
मुगला मारे गरद करे रे बिनने लोथें लगा दई पार ।
रक्तन की नदियाँ बहीं रे बिनने लोथें लगा दई पार ।

—'मधुकर' अंक २३, वर्ष २ से

---

१ सौक=सौ के लगभग ।

अरी मानो, कहाँ से मुगल चले, कहाँ आकर पड़ाव डाला ? पश्चिम से मुगल चले ओ मेरी सास, उन्होंने पूर्व में पड़ाव डाला। ऊँचे चढ़के मानो ने देखा मुगलों का बाजार लग गया है। यदि रानी सास का हुक्म पाऊँ, तो मुगल-बाजार देख आऊँ। मुगलों का क्या देखना है, अरी मानो, मुगल तो निरे गँवार हैं। सास के रोके मैं न रुकूँगी, मैं तो मुगल-बाजार देख आऊँगी। यदि तुम देखनेवाली हो मानो, तो सोलहों शृंगार कर लो। तेल लगाकर पटियाँ काढ़ ली, मानो ने सिंदूर से माँग भर ली। माथे पर बीज बहुत फबो, बिंदियों की शोभा तो अलग ही है। चलती-चलती मानो कुम्हार के घर पहुँची। ओ भाई कुम्हार के बेटे, मेरे लिए एक मटकी गढ़ दो। एक मटकी क्या गढ़ूं, दो चार मटकियाँ हों, तो गढ़ भी दूं। अरे भाई, एक मटकी गढ़ दो, जिसमें दूध भी बने और दही भी। अरे भाई, ओ कुम्हार के बेटे, तुम एक मटकी का मोल कर दो। पाँच टके इसकी बौनी है, लाख टका इसकी कीमत है। ओ कुम्हार के बेटे, पाँच टके धरती पर रखे हैं, कहकर मानो ने मटकी उठा ली। दूध-दही उसमें भर लो मानो, मुगल-बाजार देख आओ।

चलती-चलती मानो वहाँ गई, जहाँ मुगल-बाजार भरा था। मानो ने पहली हाँक मारी—अरे कोई दही लेता है या दूध ? मैं दूध-दही का गरज़मन्द नहीं हूँ, अरी मानो, घूंघट का मोल कर दो। मानो ने दूसरी हाँक मारी कि इतने में मुगल ने उसका पीछा किया। लौट आ मानो, पलट आ, मेरी रानी को देखती जा। रानी का क्या देखना ? अरे मुगल, ऐसीं तो मेरे यहाँ गोबरारी (गोबर उठानेवाली) लगी हैं। लौट आ मानो, पलट आ, मेरे कुंवर को देखती जा। कुंवरों का क्या देखना ? मेरे यहाँ तो ऐसे गुलाम रहते हैं। लौट आ मानो, पलट आ, मेरा हाथी देखती जा। हाथियों का क्या देखना ? अरे मुगल, वे तो मेरी भूरी भैंस के मोल के हैं। (लो) घूंघट खोलते ही दस मरे और बिंदली देखते ही पचास मुगल मर गये। सौ मुगल तब मरे, जब ज़रा मानो

की पीठ उघड़ गई। चन्द्रावल सोते से चौंक पड़ा—अरे, तेरी ब्याहता को तो मुगल लिये जा रहे हैं। मुगलों को मार-मारकर गर्द कर डाला, उसने लाशें पाट दीं। रक्त की नदियाँ बह निकलीं।

इतिहास से पता चलता है कि मुगल बहुधा ग्राम की लड़कियाँ या बहुएँ बलपूर्वक उड़ा ले जाया करते थे। लोकगीतों में भारतीय इतिहास का मुगल युग मौजूद है। सभी जगह मुगलों का इश्क—प्रेम गीतों में ठुकराया गया है।

उपसंहार

अंत में यहाँ कुछ गीत ऐसे दिये जाते हैं, जिनमें पाठकों को बुन्देलखंडी ठेठ लोकगीतों का स्वाद मिलेगा। परंतु, स्थानाभाव के कारण उनकी टीका देने में असमर्थ हूँ।

(१)

मोरी चन्दा चकोर।
मोरी चन्दा चकोर।
काजर लगा ले कोरई कोर,
मोरी चन्दा चकोर।
अरे काजर काहे आँजे गोरी,
तोरे तो नैना काजर बिन कारे।
मोरी चन्दा चकोर।
मोरी चन्दा चकोर।

(२)

छुटकाय रये केस भँवर कारे,
भँवर कारे हो महाकारे।
कै तोरी सास ननद झक बोली,
कै तोरे राजा नै दईं गारीं।
नै मोरी सास ननद झक बोली।

न मोरे राजा नै दईं गारी।
हमारे पिया गये गढ़ चाकरी,
उनकी बाट देख रई गोरी।

(३)

निखरी है गोरी देह कहा खाये ?
कै तुमने खाई दूध मलाई,
कै काहू रसिया ने रस पियाये ?
नै हमने खाई दूध मलाई,
नै काहू रसिया ने रस पियायो।
निखरी है गोरी देह ललन जाये,
हो होरल जायें।

(४)

नजरियाँ मोई सों लगैयो मोरे राजा।
कै मोरे राजा अँगना में कुवला खुदैयो,
ढिमरिया मोई खों बनैयो मोरे राजा।
कै मोरे राजा अँगना में बगिया लगैयो,
मलनियाँ मोई खों बनैयो मोरे राजा।
कै मोरे राजा अँगना में चौपर डरैयो,
बाजू मोई खों जितैयो मोरे राजा।
नजरियाँ मोई सों लगैयो मोरे राजा।

(५)

बँगर जोत बयें,
चना मैंनें बँगर जोत बये।

जब वे चना भये
दो दो पतौअन
सौतन खोंट लये,
चना मैंने बँगर जोत बये।

(६)

सासरे के जात मोय बड़ी कठनाई, मैं न जैहों माई।
एक दार गई तो गाँठ जोर दई, तो गाँठ जोर हात जोर
बिनती कराई।
मैं न जैहों माई।
ऊँची अटरियाँ लाल किवरियाँ बिछी जाँ सिजरियाँ।
दियला जराय मसकाँ मैं देखी, तौ सौत परी पाई।
मैं न जैहों माई।
सासरे के जात मोय बडी कठनाई, मैं न जैहौं माई।

(७)

अँगरेजी परी गोरी गमखाने,
काहाँ बने चौकी काहाँ वने थाने।
काहाँ जो बन गए जे जैलखाने। अंगरेजी…
अगीत बनी चौकी पछीत बने थाने,
बाकी दैरी पै बन गए जे जैलखाने।
अंगरेजी परी गोरी गमखाने।

(८)

चलो चलिये हाट इमलिया की, चलो चलिये ।
सौदा सूत मोय कछू न चानैं, तनक ललक मोय बिंदियन की ।
सौदा सूत मोय कछू न चानैं, तनक ललक मोय बिछियन की।
चलो चलिये हाट इमलिया की, चलो चलिये ।
सौदा सूत मोय कछू न चानैं, तनक ललक मोय कजरन की ।
चलो चलिये हाट इमलिया की, चलो चलिये ।

(९)

ले गई मोरे महाराज,
छिगुरी को रस मुँदरी ले गई ।
काना सों सोनो मँगाइयो,
काना के सुगर सुनार ।
लंका से सोनो मँगाइयो,
पन्ना के सुगर सुनार । छिगुरी को रस...
को जौ मुँदरी पैरियो,
किनने चुका दयें दाम ।
राधा मुँदरी पैरियो,
श्रीकृष्ण चुका दये दाम। छिगुरी को रस...

(१०)

बना रस गोलियाँ न घालो,
काऊ के लाग जैहे रे ।
गगर मोरी फूट जैहे रे,
चूनर मोरी भींग जैहे रे ।

चुनर मोरी भींग जैहे रे,
सास घर रूठ जैहे रे।

(११)

चंदा पे खेती करौं, सूरज पै करौं खरयान।
जोबन के बदरा करौं, मोरे पिया बखर खों जायँ ?
झमक झरि लाग रही साहुन की।

(१२)

नई रे नतैती निभाउने पर है।
निभाउने पर है, चलाउने पर है,
नई रे नतैती निभाउने पर है।

चार महीना गरमी के आ गए,
राजा बिजनियाँ डुलाउने पर है।
नई रे नतैती निभाउने पर है।

चार महीना बसकारे के आ गए,
राजा मड़ैया छबाउने पर है।
नई रे नतैती निभाउने पर है।

चार महीना जड़कारे के आ गए,
राजा रजैयाँ भराउने पर है।
नई रे नतैती निभाउने पर है।

(१३)

ऊधो ऐसी कइयो हर सें,
नँदलाला गिरधर सें।

कै गये ते दस पाँच रोज की ।
बीत गईं हैं बरसें ।
खान पान निस नींद न आवै,
प्रान रहे दिन तरसें ।
अवधलाल आँखन के अँसुवा,
होड़ लगायें फिर सें ।

(१४)

जब से लगी कूबरी काने,
हो गए स्याम विराने ।
उन बिन बिकल रहत हम ऊधो,
कब आवें बरसाने ।
कहियो कही हमारी ऐसी
कही जोर जुग पाने ।
मनभावन बिन बिकल राधिका,
ना रये प्रान ठिकाने ।

(१५)

जो तन भओ दूबरो कब सें,
मित्र बिछुर गए जब सें ।
ना काहू ने मिला दये हैं,
करें निहोरा सब सें ।
सारी रात अरज चंदा सें,
सब दिन सूरज खाँ सें ।
'रसिया' कह दोऊ नैन हमारे
लगें साँवरी छब सें ।

परिशिष्ट १

शब्दार्थ

((गीतों में आये हुए ठेठ बुन्देलखंडी शब्दों का अर्थ)

अ

अकारथ — व्यर्थ, बेकाम
अग्गा — आक, अकौआ
अम्मा — आम
अनमने — उदास, चिंतित
अवध — अयोध्या, अवधि
अधली — आधी पाई
अचहँड़-पचहँड — दायजा, हंडा आदि पीतल के बर्तन
अलोप — लुप्त
अरन — (बहु०) अरा, आला
अबहुँ — अब तक
अनयारे — अनीदार, नुकीले
अचक रई — सहसा रुक जाना, स्तंभित होना
अनबोले — बिना कहे
अनबोला — बात न करनेवाला, कम बोलनेवाला
अचवन — भोजन के पश्चात हाथ धोना
अबै — अब
अँगना, अँगनाई — आँगन
अँदयारी — अँधेरी
अगम — आगे को, पूर्व दिशा
अँगिया — स्त्रियों का वस्त्र विशेष, चोली
अन्हैवो — नहाना
अँचरन — अंचल में
आगरी — अधिक
आखत — अक्षत, चाँवल
आजुल — अजा, पितामह

आतन-जातन — आते-जाते
आगौनी — आतिशबाजी
ओबरीं — भीतर का घर, पति-पत्नी का शयन कक्ष
ओली — गोद
ओई — उसी
ओरन-खोरन — गली-कूचों में
ओछे कानन — ओछे कान, नया नाटा, जिसके चार दाँत पूरे निकल आये हों और दो दाँत निकल रहे हों
आरों — यारों, दोस्तों
औगुन — अवगुण

इ

— इकहरी, दुबली
इनईं — इन्हीं
इमलिया — इमली
ई — इस

उ-ऊ

उए — उसको
उजयार दई — प्रज्वलित कर दी
उघारें — खोलें
उनजस — एकरूपता
उतईं — वहीं
उमरिया — उमर
उपासो — उपवास किये हुए
उसीसो — सिरहाने
उलिया — ओली
उलायती — जल्दी में
उलायत — शीघ्रता
उन्हारे — उपमा दिये जाते
उजरऊ — उजार करने-वाली
उतै — वहाँ पर
उगेरो — खोलो
उनईं खों — उन्हींको
ऊ में — उसमें
ऊसईं — वैसे ही, व्यर्थ
ऊन आये — छा गए

ऊँगन — निकलना

ऊबे — बरात का लगना थक जाना,

ए-ऐ

एबात — सुहाग

एले — इस ओर का

ऐंचो — निकालो

क

कई — कहा, कहना

कऊँ — कहीं

ककरा — कंकड़

कसक — पीड़ा, दर्द

कसकन के — (बहु०) कसक (पीड़ा) के

ककरिजिया — काँकरेजी रंग की धोती

करधुनियाँ — करधौनी

कसाइन — कसाई का बहुवचन

कवैयाँ — कहने को

कँहना के — कहाँ के

काहे — किस

काऊ, काहू — किसी

काय — क्यों

कायकी — किसकी

काहाँ — कहाँ

काहा — क्या

काना — किसका, कहाँ के

कात — कहता, कहते

काने — कहने

कामन — कामिनी

काहो — क्या

का — क्या

कानन — कानों में

कुचीतारे — ताला कुंजी

कुवल — कुवला, कुआँ

कुखिया — कुक्षि

कुल्ल — बहुत-सा

कुहुक रई — मोर का बोलना

कूँख — कुक्षि

कूकर — कुत्ता

कूलो — कमर का एक भाग

कितऊँ — कहीं

कोदों, कोदीं — ओर, तरफ

कौंचा — हाथ का पंजा

कै — कितनी
कै दई — कह दिया
कैयो — कहना

ख

खकल — दाँतों से काट-कर जख्मी बना-ना, दिल में बे-चैनी पैदा करना
खबत — कीचड़ में खबता हुआ
खटुलिया — छोटी खाट
खाँ — को
खों — को
खोरन — गलियों में
खोंसें — लगाये हुए
खिरकिन — खिड़कियों से
खिरका — ढोर खड़े करने की जगह
खोंड़ा — लकड़ी से घेरी हुई जगह जिसमें रात को ढोर बंद कर देते हैं
खोर, खोरें — गली
खिरकों — खिरका में
खुँस — क्रोध, गुस्सा

ग

गबेलुआ — गर्भ का बच्चा
गओ — चला गया
गन्ता — जन्मोत्सव
ग्याभन — गाभिन
गरब — गर्व
गर बिच — गले में
गरय से — इज्जतदार, बड़े
गरेला — गरयाल
गढ़वाव — बनवाना
गलवा — गाल
गसें — फाँस से बाँधा हुआ
गुइयाँ — सखी
गुसैयाँ — भगवान
गुमान — घमंड
गेंवड़ा, गेंवड़ें — गाँव का बाहरी मैदान
गैयो — पकड़ना
गैलारे — राहगीर
गोरी धन — गौरवर्ण स्त्री

घ

घलीं — मारी गईं
घमौआ — धूप
घरैया — गृहस्वामी, पति
घरियक — घड़ी भर
घाल लये — डाल दिया
घाम, घामो — धूप
घालन लगे — मारने लगे
घरबारे — घर के आदमी, पति
घिनौची — पानी रखने की जगह
घिया-गुर — घी-गुड़
घैर — अफवाह
घोरो — घोड़ा

च

चलतन — चलते ही
चरुवा — लोटा, हँड़िया
चलौनो — बिदा कराना
चाय — चाहे
चाने — चाहना है
चाये — चाहे
चितसार — चित्रशाला
चुटीला — गुथी चोटी
चँदना — ऊँची जगह, चबूतरा

छ

छमाके — पैरों के जेवर पैंजना, पायलों आदि में डाले गये कंकड़ों की सम्मिलित आवाज
छुटक — खुली
छिछलो — फैला, विस्तृत
छिड़ियों — छोटी गली, सीढ़ी
छैयाँ — छाया में
छैल — सुसज्जित युवक
छिइयो — छूना

ज

जन — सेवक
जबइँ — जब ही

जनेईं — ब्यानी हुई
जनवासा — बरात ठहरने की जगह
जमान — जमानतदार
जिदना — जिस दिन
जिया, जिउ — प्राण
जिन — निषेध वाचक, मत, नहीं
जिन जैयो — मत जाना
जीने — जीवित रहने
जियन — जीवन
जीरा — प्राण, हृदय

जिमरिया — एक किस्म का नींबू
जिमी — जमीन
जुगत — युक्ति
जुठार दव — जूठा कर दिया
जेउत-जेउत — खाते-खाते
जेनै — जिसने
जुड़ानी — ठंडी हुई
जोगिरा — योगी, साधु
जौन — वह
जौलों — जब तक
जेइए — भोजन करिये

झ

झडूला — वह बच्चा जिसका मुँडन संस्कार न हुआ हो
झमाँ — चक्कर, वेहोशी
झाँकत — देखते

झरोखा — खिड़की
झालर — बच्चों के जन्म समय के बाल, जिन पर छुरा न फिरा हो

ट-ठ

टकाउर — गले का जेवर
टटिया, टटा — वृक्ष की टहनियों से बनाया हुआ फाटक
टिया — अबादो

टलिया — बूढ़ी गाय
टारे टरो नईं — हटाये से मत हटो
टाँचरी — खोटी
टेर — पुकार
टेरें — पुकारें, बुलावें

टिबकी — बिंदी

ठाड़ीं — खड़ीं

ड

डबैयाँ — आखों में आँसू भरना

डललन-पललन — डलियों भर-भर

डरैयाँ — डाली

डीमा — मिट्टी के बड़े-बड़े टुकड़े

डुकरिया — बुढ़िया

डुकरा — बुड्ढा

डोरा — सूत, धागा

डोरेना — रस्सी

डेबढ़ा छुटाना — बंदूकें चलवाना

डेरो — बाम

त

तकीं — देखीं

तरें — नीचे

तरकुला — कानों में पहिनने का जेवर

तनक — थोड़ा

तक कें — निशाना लगा-कर

ताती — गरम, ताजी

तुरतईं — शीघ्र ही, उसी समय

तिबासी — तीन दिन की बनी

तिहाई — जमीन की किस्त

तितने — उतने

तुपक — बंदूक

तैंने — तूने

तोय — तुझे

थ

थतोलत — हाथ फेरना

थोरो — थोड़ा

द

दग्रो — दिया हुआ

दिहर — देहरी

दारी — (स्त्री०) अपमान-सूचक शब्द
दागियो — जलाना
दियला जरै — दीपक जले
दुकत — छिपना
दुहनी — दूध लगाने का पात्र
दुबीचे — मध्य में
देहिरा — शरीर
दोखन — दुखनी, पापिन

ध

धन — स्त्री, पत्नी
धर लई — पकड़ ली
धन्न — धन्य
धनंती — धनवान, धनी
धाम — भगतों का तन्मय होकर सम्मिलित गाना
धिया — पुत्री
धियारी — पुत्री

न

नई — नहीं
ननदुलिया — छोटी ननद
न्यारे — अलहदा
नार — नारी, स्त्री
नाँसें — यहाँ से
नाईं — नहीं
निगतन — चलने से
निग गए — चले गए
नेहा — स्नेह, प्रेम
नैंक — तनिक, थोड़ा
नेग — दस्तूरी
नोनो — अच्छा
नोनी — अच्छी
नोन — नमक
नैंयाँ — नहीं है
नैंचें — नीचे
नाँय-माँय — यहाँ-वहाँ

प

पत — लज्जा
पगरेत — गृहस्वामी जिस के घर विवाह हो
पगरेतन — (स्त्री लिंग में) गृह-स्वामिनी

पटियाँ — सिर के बालों को सजाना
पटा देव — बंद कर दो, छाप दो
पच — जच्चा का पथ्य
पजैं — उत्पन्न हों
परने होय — लेटना हो, सोना हो
परैला — गरयाल बैल, पड़ती जमीन
पात, पान — पत्ता
पारे — पहरा, पहरे
पाँउन — पाँव में
पनिया खों — पानी को
पिरयानी — प्रसव वेदना होना
पिराय — दर्द करना
पीड़ोली — पिंडली
पीसनों — आटा
पुतवंती — पुत्रवती
पूजै — सामर्थ्य, अपनी स्थिति के अनुसार जो हो सके
पैले — दूसरे, आगे के
पौरन — पौर में
पौरिया — पौर की रक्षा करनेवाले द्वार-पाल
प्रान खान — प्राण लेनेवाली

फ

फरियो — फलना
फुलबगिया — फूलों का बाग
फुलवा — फूल

ब

बन्ना, बना — दूल्हा
बनरी — वह लड़की जिसका विवाह हो रहा है
बनरा — दूल्हा
बचवैयो — पढ़वाना
बई — वही
बदल — बदल

बतकाव — बातचीत
बगर — ढोरों का झुंड
बाबुल — बाप
बासन — बर्तन
बाव — हवा
बाँय — बाँह, हाथ
बाके — उसके
बाँट बड़ार — हिस्सा बाँट करके
ब्याव — विवाह
बारे — छोटे, शिशु
बा — वह
बूढ़ी दूब — पुरानी दूब
बिरज — ब्रज
बिराजे — शोभित हो
बिरन — भाई
बिरना
बिसर जा — भूल जाओ
बिरजी — हुँडसी, मचली
बिलमाव — व्यतीत करो
बिगसन लगे — फूलने लगे
बिरहुली — शौकीन
बिरानी — पराई, दूसरे की
बिचके — छड़के
बिजत्तर — चलतीपुर्जी, चालाक
बिड़ारे — भगा दिये
बिहूने — फीके, रहित
बिल्लू — बिल्ली
बिसरत नैयाँ — भूलती नहीं
बीरन — भाई
बीध — विवाह
बेबंदेज — बिना प्रबंध की
बेंड़ी — गजब की
बेलन — बेला का बहु-वचन, कटोरा
बेड़नी — ग्राम नर्तकी
बेनई बैनें — बहिन-बहिन
बैहर — हवा
बैया — ननद का उप-नाम

भ

भखले — खा ले
भभूत — विभूति, भस्म, राख
भ्याने — आगामी दिन, विहान
भोर — प्रातःकाल
भौतक — बहुत-सा
भौंय — भौंह
भौत — बहुत

म

महर-महर	— तेज सुगंधि
महकानो	— सुगंधि फैली, बसाना
मतो	— सम्मति, सलाह
महूम	— लगन, उत्साह
मती	— स्थूल शरीर, मोटी
मजल की मारी	— दिन भर चलते-चलते थकी हुई
मसक दव	— किसी कार्य को अधिकता के साथ करना
म्याना	— पालकी के समान एक सवारी जिसे कहार लें जाते हैं
मने	— मन को
मनो	— परंतु, किन्तु
माई	— माता
मातें	— वहाँ से
माड़े	— बहुत बड़ी मैदा की रोटी
माँय सें	— वहाँ से
मिहरिया	— स्त्री
मुगरिया	— लकड़ी का मोटा छोटा डंडा जिससे अनाज कूटते हैं
मुखबिरियाँ	— मुंह में दबा हुआ पान का बीड़ा
मुख्तार	— कारिंदा
मुदरी	— छल्ला
मुख मोरो	— मुँह फेरना, इन्कारी
मुनैयाँ	— पक्षी विशेष, प्रेमिका के लिये व्यवहृत
मूंदियो	— बंद करना
मोगिया	— बहेलिया
मोरें	— मेरे घर पर
मोंड़ा-मोंड़ी	— लड़का-लड़की
मोय	— मुझे
मौं की पातरी	— मुंह की हल्की

य

यारी — दोस्ती

याके — इसके

र

रय, रये — रहे

रई — रही

रात — रहते, रात्रि

रगपत,

रघपत — रघुपति, राम

रइयो — रहना

रानें — रहना है

रीते — खाली

रिसानो — रूठना

रिरके — खिसके

रूरकल — लटकना

रूख, रूखड़ो — वृक्ष

रूपे — चाँदी

रंचक — जरा भी, तनिक-सी

रैंबू — रहेंगे

रैंना — रहना

रोजउ — नित्य ही

रानें — रहना

ल

लमछारे — लम्बे

ललन — छोटा बच्चा

लड़ैती — लाड़ली, प्यारी

ललुवा — लड़का

लर — लड़ी

लड़नदे,

लड़गहरी — वह लड़की जिसका विवाह हो रहा हो

लँय — लिये

लाने — लिए, वास्ते

लाड़ो — प्यारी, लाड़ली

ल्याईं — ले आईं

लुड़िया — गोल पत्थर

लुचें, लुचैयाँ — पुड़ी

लुहरी — छोटी, कनिष्ठा

लछारी — लम्बी, बड़ी

लरैयाँ — लड़ने को उद्यत्

लटी — बुरी

लिवौआ — लिवानेवाले

स

संचत — संतति, संतान
सरजा — नथनी का झूमका
संसे — संशय में
सपरन — स्नान करने
सबयार — बिलकुल, पूरी
सार — नतीजा, ढोरों के बाँधने की जगह
सालें — झाँसना, दुख होना
साजन — समधी
साँतिया — स्वस्तिक
साके को — उत्साहपूर्वक
साँसे — साँचा
सुन्ने — सोना
सूकनो — सुखेना, अनाज
सूक — सूखकर
सियरी — मलीन
सैनैयाँ — शहनाई
सैंगो — पूरा
सैरो — साका, एक नृत्य

ह

हन लये — लगा लिये
हन गए — लग गए
हतुलिया — बच्चों का हाथ
हतो, हती — था, थी
हारी — थकी
हेल — टोकनी जिसमें कुछ भरा हो
हेलरीं — सहेली
हेरत — देखना
हेरें — देखें
होरल — लाड़ला लड़का
हमाई — हमारी
हिरात — खोतो
हिरा — खो
हटकें — रोके
हेंसा — हिस्सा
हनकें — कसकें
ह्याँ — यहाँ

परिशिष्ट २

पुस्तक में समाविष्ट गीतों की वर्णानुक्रम से प्रथम पद की सूची

न

प-फ